धम्मपद

अर्थात्

महात्मा बुद्ध-प्रणीत नीतिबोध

अनुवादक

रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

कलकत्ता

२०१, हरिसन रोडके "नरसिंह प्रेसमें"

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित।

सन् १९१९ ई०

प्रथम बार १००० } { मूल्य ॥=)

श्रीयुत पण्डित विष्णु बापूराव सर्वटे, बी० ए०,

एल० एल० बी०, वकील, सिवनी मालवा,

की सेवा में :—

बन्धुवर,

यद्यपि प्रयत्न यह भवत्कृपा का फल है :
पर भक्त-समर्पित तुलसी का यह दल है।
धृष्टता क्षमा कर इसे ग्रहण कर लीजे ;
हे मान्य बन्धु ! कृतकृत्य दास को कीजे ॥

रामचन्द्र ।

निवेदन ।

जिस समय महात्मा गौतम बुद्धको सद्धर्म्मके तत्त्वोंका पता लगा और जब उन्हें निर्वाण-प्राप्तिका मार्ग दीख पड़ा, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने धर्म्म-तत्त्वोंको जनतापर प्रकट करने का उद्योग आरम्भ किया। उन्होंने सहस्रों नर-नारियोंको अपने दिव्य धर्म्म की दीक्षा दी; और उन्हें अपने शिष्य बनाकर देश-देशान्तरोंमें अपने धर्म्मका प्रसार करनेके लिए भेजा। उन्होंने जो धर्म्म-तत्त्व बतलाये थे, वे पुस्तक-रूपमें नहीं लिखे गये थे। परन्तु उनका बतलाया हुआ ज्ञान शिष्य-परम्परासे जारी था। काल पाकर शिष्यगण उसे बिसार चले किम्वा उसके पाठ में अन्तर पड़ने लगा। महात्मा गौतम बुद्धके निर्वाण-पद प्राप्त करनेके बाद ईसा सन् से पूर्व ४७७ वें वर्ष में राजगृह में बुद्धानुयायियों की एक बृहत् सभा का अधिवेशन हुआ था। काश्यप, आनन्द और उपाली आदि प्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षु इस सभाके मुख्य संचालक थे। इस सभामें परम्परासे चले आनेवाले महात्मा बुद्धके उपदेशोंकी चर्चा हुई और उनके किये हुए उपदेश 'पितकत्रय' में सुरक्षित रक्खे गये। इस 'पितकत्रय' के नाम इस प्रकार

हैं:—(१) विनय पितक (२) सूत पीतक (६) अभिधर्म्म पीतक। इनमें धम्म-पदका 'सूत पीतक' में समावेश किया जाता है। धम्म-पदका अर्थ धर्म्मकी सीढ़ी अथवा धर्म्म-मार्ग है। इन सीढ़ियोंके तय करनेपर मनुष्यको निर्वाण प्राप्त होगा। धम्मपद बौद्ध लोगोंकी गीता किम्वा बाइबिल है। महात्मा बुद्धने सूत्र-रूपमें अपने शिष्योंको जो उपदेश दिया है, वही इस धर्म्म-ग्रन्थमें लिखा गया है। मूलग्रन्थ पाली भाषामें है और संस्कृत, चीनी, मलायी, तिब्बती, ब्रह्मी, मंगोली, जापानी इत्यादि पौर्वात्य भाषाओंमें, इसी तरह लेटिन, फ्रेंच, जर्म्मन, डेन्स और अङ्गरेज़ी आदि पाश्चात्य भाषाओंमें भी इस धर्म्म-ग्रन्थके अनुवाद वर्त्तमान हैं। सिर्फ़ इसी बातसे इस धर्म्म-ग्रन्थकी श्रेष्ठता प्रकट हो जाती है।

श्रीयुत पण्डित यादव शङ्कर बावीकर, बम्बई, ने अनेकों अनुवादोंकी सहायता से, बड़े परिश्रम और खोजके साथ, इस धर्म्म-ग्रन्थका मराठीमें भी उल्था किया है। आपका मराठी अनुवाद कितना श्रेष्ठ और लोक-प्रिय है सो सिर्फ़ इसी बातसे जाना जा सकता है कि आपके इस अनुवादके लिए आपको 'डेक्कन वरने-कूलर ट्रान्सलेशन सुसाइटी' ने और सयाजीराव महाराज गायक-वाड़ने पारितोषक दिया है और बम्बई तथा मध्यप्रदेशके शिक्षा-विभागोंने आपके अनुवादको पुस्तकालयोंमें रखने तथा पारितोषक में देनेके लिए स्वीकृत कर लिया है।

धम्मपद के इसी मराठी-अनुवाद 'धर्म्मपद' का प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी-अनुवाद है। मैं बावीकर महाशयका अत्यन्त ऋणी

हूँ, जिन्होंने कृपा-पूर्व्वक मुझे अपने ग्रन्थका हिन्दी-अनुवाद करनेकी सम्मति प्रदान की।

मैं अपने मित्र, बाबू बृजमोहन लालको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने इस पुस्तकको प्रकाशित करा मेरे उत्साहको बढ़ाया है।

अन्तमें, पाठकोंसे मेरा यह निवेदन है कि वे कृपा कर पुस्तकको साद्यंत पढ़ जायँ, श्लोकों पर ध्यान-पूर्व्वक मनन करें, उनका परिशीलन करें और देखें कि महात्मा बुद्धके उपदेश कितने श्रेष्ठ और गम्भीर हैं। मुझे अपनी भाषाके सम्बन्धमें कुछ कहनेका अधिकार नहीं। यदि सुहृद् पाठकगण मुझे मेरी भाषा-सम्बन्धिनी भूलोंसे परिचित कर दें, तो मैं उनका आजन्म ऋणी रहूँगा और यदि इस पुस्तकको द्वितीय संस्करणका सौभाग्य प्राप्त होगया, तो उसमें वे सब भूलें, जो मेरे भाषा-अज्ञानके कारण इसमें रह गई हों, ठीक करदी जायँगी।

यदि इस पुस्तकके पठनसे पाठकोंके अन्तःकरणोंमें नीति, धर्म्म और सदाचारके उच्च तत्त्वोंका थोड़ा भी बीजारोपण हो गया, तो मैं अपनी मिहनत वसूल समझूँगा।

छिन्दवाड़ा
सी० पी०।

विनीत,
रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे।

अनुक्रमणिका।

महात्मा गौतम बुद्ध

का

संक्षिप्त जीवन-चरित्र।

लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले हमारे देशमें महात्मा गौतम बुद्ध नाम के एक महान् धर्म्म-संस्थापक हो गये हैं। उनके स्थापित किये हुए धर्म्म को बौद्ध-धर्म्म कहते हैं। यद्यपि यह धर्म्म आज हमारे देशमें प्रचलित नहीं है, तथापि ब्रह्मदेश, तिब्बत, नैपाल, भूटान, सिक्कम, रूस, कोरिया, मङ्गोलिया, तातार इत्यादि देशोंमें और उसी तरह लङ्का, मलाया द्वीप, स्याम, चीन, जापान, इत्यादि पृथ्वी के अनेक देशोंमें यह धर्म्म अभी तक प्रचलित है। इस पृथ्वी पर बौद्ध-मतके माननेवालों की संख्या लगभग पचास करोड़ है और वह अखिल

मानवजाति की मनुष्यसंख्या की एक-तिहाई है। ऐसे नरश्रेष्ठ महात्मा का चरित्र लिख देना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है।

ईसा सन् के लगभग ६६२ वर्ष पहले अयोध्या-प्रान्त में रोहिणी नदी के किनारे कपिलवस्तु नामक नगरी में शाक्य-कुलके शुद्धोधन नामक राजा राज्य करते थे। वे अत्यन्त सुशील और प्रजापालनमें बड़े दक्ष थे। कोलीयन के अञ्जत नामक राजा ने अपनी दो लड़कियाँ (१) मायादेवी और (२) महाप्रजापति अथवा गौतमी उन्हें व्याही थीं। वे महान् साध्वी और पतिव्रता स्त्रियाँ थीं। यद्यपि राजा को सब प्रकार की ऐहिक समृद्धि उपलब्ध थी, तथापि संतति न होने से वे सदैव उद्विग्न रहा करते थे। राजा ने संतति के निमित्त उपोषण, व्रत, वैकल्य ब्राह्मणभोजन, देवतार्चन, सन्तसेवा इत्यादि सब कुछ कर छोड़ा था। उनकी अवस्था पैंतालीस वर्ष की हो चुकी थी, तिसपर भी पुत्र-प्राप्ति के सुयोग का लाभ उन्हें अभी तक नहीं हुआ था।

एक दिन रातको जब मायादेवी अपने महल में निद्रित थी उस समय उसने स्वप्न में यह देखा कि, एक देदीप्यमान तारा नभ-मण्डल से पृथ्वी पर उतर कर उसके पास आया। उस तारे ने प्रचण्ड रूप धारण किया, उसमें दिव्य शलाकाएँ फूटीं और उसने सफ़ेद हाथी का रूप ले लिया। वह हाथी उसके सन्निद्ध आकर अत्यन्त सूक्ष्म हो गया और उसने दाहनी बाज़ू से रानीके उदर में प्रवेश किया। इस स्वप्न के का-

रण वह भयभीत हो गई और उसने राजा को रात्रि का सारा समाचार कह सुनाया। राजाने अपने विद्वान् पुरोहित तथा मन्त्रियोंसे उस स्वप्न का अर्थ पूँछा। इस पर उन लोगों ने कहा, 'यह स्वप्न अत्यन्त शुभदायक है। इससे यह मालूम होता है कि अव आपको शीघ्रही पुत्रप्राप्ति का लाभ होगा। वह पुत्र वड़ा वुद्धिमान् होगा। अगर वह संसारी रहा तो वड़ा वलवान् और सार्वभौम चक्रवर्त्ती राजा होगा। और यदि वह संसार से विरक्त रहा तो वह वड़ा भारी धर्म्म-संस्थापक वनकर करोड़ों लोगों का उद्धार करेगा।' इस स्वप्नकी सत्यता शीघ्रही प्रकट हो गई। थोड़ेही दिनों के वाद रानी मायावती ने गर्भ धारण किया। तव शुद्धोधन राजाको तथा कपिलवस्तु के पुरवासियों को वड़ा आनन्द हुआ। प्रजा-जनों से शुभ आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छा से राजा ने फिर कई तरह के दान और धर्म्म करना आरम्भ किये। उन्होंने कई प्रकारके यज्ञ किये, आनन्दोत्सव मनाये। नौ महीने पूरे होतेही रानी ने प्रसूत होने के लिये अपने पिता के यहाँ प्रस्थान किया। उसके साथ रथ, म्याने, हाथी, घोड़े, दास-दासियाँ तथा सव प्रकारकी विपुल सामग्री देकर राजा ने उन्हें वड़ी सज-धज के साथ उसके पिता के यहाँ रवाना किया।

इस तरह अपनी मण्डलीके साथ कुछ दिनों तक मार्ग अतिक्रमण करने पर मार्ग में उसे एक सघन जङ्गल मिला। वसन्त ऋतु का समय था। इसलिये अनेक प्रकार के पुष्प खिले हुए

थे और उनकी सुगन्ध से वह सारा अरण्य महक रहा था। वृक्षों पर कोमल हरी पत्तियाँ दीख रही थीं। फल देने वाले वृक्षों पर पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड आनन्द में मस्त होकर कल-कल शब्द करते हुए इतस्ततः परिभ्रमण कर रहे थे। भ्रमरोंके झुण्ड गुञ्जारव करते हुए एक पुष्पसे दूसरे पुष्प पर बैठ कर परागका प्राशन करने में मग्न हो गये थे। इसी समय सहसा रानी मायावती के उदरमें पीड़ा उत्पन्न हुई जिससे उसे तथा उसके साथियों को वहीं ठहर जाना पड़ा। रानीको प्रसव-वेदना हो रही है यह देख कर सारी मण्डली चिन्ताक्रान्त होगई और दास-दासियों में बड़ी खलबली मच गई। एक प्रचण्ड वृक्ष के तले दासियों ने पर्ण-शय्या तैय्यार की और आसपास कनात बाँधकर रानीको प्रसूत होने के लिये उस पर लिटा दिया। थोड़ीही देरमें प्रसूत होकर उसे एक पुत्ररत्न होगया। यही शाक्यकुलके दीपक महात्मा गौतम बुद्ध थे।

जिनके लिये इतने व्रत और यज्ञ किये गये थे, उन राजपुत्र का जन्म अपनी राजधानी में अथवा आंजोली-राज सुप्रबुद्ध की नगरी में न होकर एक निविड़ वनमें होना बड़ी विचित्र बात है! कई व्रत और उपोषण करने से तथा मार्ग की थकावट के कारण रानी की प्रकृति बहुत ख़राब हो गई थी। म्याने में बैठकर वह अपने नूतन बालक के साथ पति के यहाँ वापिस लौट गई। पुत्रके मुख का दर्शन करतेही शुद्धोधन राजाको वर्णनातीत आनन्द हुआ। सारी नगरीमें आनन्दके उत्सव मनाये जाने लगे। राजा

ने अनेक प्रकार के दान-धर्म्म किए। बालक का नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। रानी मायावती की बीमारी दिन प्रति दिन बढ़ती गई और अन्तमें उसी में उसका शरीर छूट गया। मायादेवीकी मृत्यु के पश्चात् सिद्धार्थ की सौतेली माता महाप्रजापति अथवा गौतमी उसका पालन-पोषण करने लगी। उस बालक पर राजा अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रेम करने लगे। वह लड़का अब दिन प्रति दिन बढ़ता गया। उपनयन-विधि आदि हो चुकने पर राजाने गौतमको विश्वामित्र नामक एक विद्वान् ब्राह्मणके यहाँ विद्योपार्जन करने के लिये भेजा। गौतम इतने बुद्धिमान् थे कि गुरुका बतलाया पाठ उन्हें उसी समय कण्ठ हो जाया करता था। वे बड़े विचारशील थे। इसलिये गुरुजी जो कुछ बतलाते थे, उसे वे उसी समय समझ जाया करते थे। अपने सहपाठियों से वे सर्वदा प्रेमपूर्वक बर्ताव किया करते थे। जब वे किसी को विपत्ति में देखते, तो पहले उसकी सहायता किया करते थे। वे अपने गुरु तथा अपनी गुरु-पत्नी के कामोंको बड़ी सहानुभूति के साथ करते थे। इन गुणों से आप सबको प्रिय हो गये थे। मैं राजपुत्र, श्रीमान्, सत्ताधारी और सबसे श्रेष्ठ हूँ; इस अहं-भाव से प्रेरित होकर उन्होंने कभी भी अपने अभ्यास की ओर दुर्लक्ष नहीं किया और न किसी का मान-खण्डन किया। गुरुके घर अपने पुत्र का आचरण देखने के लिए एक बार राजा शुद्धोधन और रानी प्रजापति स्वयं गये थे। वहाँ अपने पुत्र का आचरण देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। गुरु के घर विद्या

पढ़ चुकने पर राजा ने उन्हें घोड़े पर बैठना, निशाना मारना, तलवार और भाला चलाना, लड़ाई लड़ना इत्यादि वीरोचित शिक्षा देने का प्रबन्ध किया। उसी प्रकार उसने अपने बेटे को शासन-सम्बन्धी ज्ञान देने की भी व्यवस्था की।

राजा की बड़ी इच्छा थी कि उनका पुत्र अच्छी तरह राज्य का शासन करे, कई राजाओं को जीत अपने राज्य का विस्तार बढ़ाकर सार्वभौम चक्रवर्ती राजा होवे। पर गौतम का राज्य-शासन-सम्बन्धी बातों की ओर तनिक भी ध्यान न रहता था। राज्य-विलासों का उपभोग लेने में उन्हें सुख न मालूम होता था। उन्हें इन सब सुखोपभोगों की बिल्कुल इच्छा न थी। दीन और दुःखित लोगों को देखकर उनका अन्तःकरण टूक-टूक हो जाता था। ग़रीब लोगों को इतना कष्ट सहन करने पर भी पेट-भर अन्न तक नहीं मिलता और धनवान् लोग भोग और विलासमें मस्त होकर आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इस विषमताको देखकर उनका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो जाता था। वे सदा विचारों से ग्रस्त दीख पड़ते थे। विलासों का उपयोग लेने में उन्हें बड़ी घृणा मालूम होती थी। राजा को अच्छी तरह मालूम हो चुका था कि उसका पुत्र संसार से विरक्त होकर उसका त्याग कर देगा। इसलिये राजाने अपने पुत्र के लिए तीन विलास-मन्दिर निर्माण कराये और उनमें अनेक प्रकारकी मनोरञ्जक सामग्री इकट्ठी की।

एक समय की बात है कि सिद्धार्थ अपने विलास-मन्दिर के

उद्यानमें विचार-निमग्न बैठे थे। आकाशमें श्वेत रङ्गके हंसोंकी एक जमात उड़ती हुई एक ओर को जा रही थी। इसी समय किसी का बाण लगने से उसमें का एक हंस दुःख से विह्वल होकर धरती पर गौतमके सामनेही गिर पड़ा। उसका शरीर रक्तमय हो गया था। गौतमने उस हंस को उठा लिया और पासही के हौज़से पानी लेकर उसका सारा शरीर धोकर स्वच्छ किया और उसके आघातों में सावधानी से पट्टियाँ बाँध दीं। इसी समय उसका चचेरा भाई देवदत्त वहाँ आ पहुँचा और गौतम से बोला, 'भाई साहब इस पक्षीको मैंने मारा है, यह मेरा शिकार है। इसलिए मैं इसका स्वामी हूं। कृपाकर आप इसे छोड़ दीजिए।' सिद्धार्थ ने उस पक्षी को देने से इन्कार किया। फिर क्या था? दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई। बात यहाँ तक पहुँच गई कि वे दोनों आपसमें कुछ भी निर्णय न कर सके और उन्हें आपस का झगड़ा तय करने के लिए न्यायाधीश के यहाँ जाना पड़ा। न्यायाधीश ने दोनों राजपुत्रों की बातों को ध्यान-पूर्वक श्रवण कर यह निर्णय किया कि जिसने उस पक्षीकी रक्षा की है और जो उसके घावोंको ठीक कर उसे जीव-दान देगा वही उसका स्वामी है। और उसीका उसपर विशेष स्वत्त्व है।

एक दिन राजाज्ञा लेकर सिद्धार्थ नगर में घूमने के लिए निकले। रास्ते में किसी बूढ़े भिखारी को देखकर उनके मन में उदासी छा गई। मनुष्य की वृद्धावस्था कितनी दुःखमय है यह सोचकर आपकी उदासी और भी बढ़ गई। आगे चल

कर उनकी दृष्टि एक शव पर पड़ी। वे उस मृतक शवके पीछे-पीछे चले गये और श्मशान-भूमि में उस मुर्दे की दहन-क्रिया भी देखी। मनुष्य की इस तरह अन्तिम दशा देखकर उनका हृदय शोक से व्याकुल हो गया। और इन सब बातों के विचार करने में आप मग्न हो गये।

एक बार सिद्धार्थ शहरमें हवा-खोरी के लिए निकले। उस समय खूब कड़ी धूप थी। चलते-चलते वे एक खेतके पास जा पहुंचे। वहाँ आपने उतनी दुपहरी में एक किसान को कड़ी मिहनत उठाते हुए देखा। इस तरहके दीन कृषकों से कर लेकर उस पर राजा तथा सर्दार यथेष्ट चैन करते हैं। यह देख कर आपको बहुत बुरा मालूम हुआ। आगे चलकर आप एक सरोवरके किनारे बैठ गये। वहाँ आपने एक मछलीको कीड़ा पकड़ते हुए देखा। थोड़ी देरमें उसी मछली को एक बड़ी मछली खा गई। वहीं पास एक बगुला बैठा था, वह उस बड़ी मछली पर अचानक टूट पड़ा और बात की बातमें उसे हड़प्प कर गया। आकाशमें उड़ते हुए उसी बगुलेके पीछे एक और पक्षी लग गया। सारांश यह है कि उनको उस जगह यह बात दीख पड़ी कि प्रबल प्राणी निर्बल प्राणियों पर किस तरह अत्याचार करते हैं।

इनको तथा इन्हीं की नाईं दूसरी बातों को देख कर राजपुत्र सिद्धार्थ के मनमें वैराग्य छा गया। उनकी इस विरक्त दशा को देखकर राजा को बड़ा कष्ट हुआ करता था। अपने पुत्र के

मन का वैराग्य दूर करने के हेतु राजा ने आपका व्याह कर देने का मनसूबा बाँधा। फिर एक मङ्गलोत्सव की तैयारी कर उसमें अनेक राजकुमारियों को बुलवा भेजा और कुमारियों को राजकुमार से आभूषण वितरण करानेका प्रबन्ध किया। राजा ने अपने मन्त्रियों से कह दिया था कि तुम लोग सावधानी से इस बात की जाँच करना कि किस राजकुमारी पर सिद्धार्थ मोहित होता है। इस तरह महात्मा गौतम ने सब कुमारियोंको भूषण वितरण किये। पर उस समय उन के मुखपर मोहकी तनिक भी झलक न दीख पड़ी। उस समय उनकी मुद्रा बड़ी प्रशान्त थी। अन्तमें सुप्रबुद्ध राजा की कन्या, यशोधरा मण्डप में पधारी। उस सुन्दरीके मुखचन्द्र की ओर सारी सभा टकटकी बाँधकर देखने लगी। राज-पुत्र भी उसपर मोहित हो गये। वे उसकी ओर बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे कि इतनेमें वह कुमारी उनके समीप आई। पर इस समय उसे पारितोषिक देनेके लिए उनके पास कुछ भी न था। इसलिए आपने अपने गलेका हारही उसे अर्पण कर दिया। सारी सभा ताड़ गई कि इस बालिका पर राजकुमार मोहित होगये हैं। वह उत्सव सम्पूर्ण हो चुकने पर राजा शुद्धोधन ने सुप्रबुद्ध राजाके पास अपना मंत्री भेज कर गौतम के लिए यशोधरा की माँग भेजी। परन्तु राजाने क्षत्रिय-धर्मका अनुसरण कर अपनी पुत्री का विवाह करनेके अभिप्राय से स्वयंवर रचनेका निश्चय किया। उस स्वयंवरमें गौतमको भी निमंत्रण दिया था। उस

स्वयंवरमें अनेक राजपुत्र उपस्थित हुए। उनमें गौतम भी थे। इस अवसर पर सुप्रबुद्ध राजाने वर-पक्षके लिए उन्मत्त घोड़ों पर चढ़कर भाला चलाना, वाण छोड़ना, तलवार फिराना, प्रतिस्पर्धी से भिड़ना, शत्रुसे अपनी रक्षा करना इत्यादि अनेक प्रकारके वीरोचित खेलोंका प्रबन्ध किया था। इस परीक्षामें गौतम अच्छी तरहसे उत्तीर्ण होगये। इसलिए यशोधरा ने आप के कण्ठमें जयमाला पहराई। इसके बाद शीघ्रही बड़ी धूम-धामके साथ उन दोनों का व्याह हो गया। विवाह होने परकुछ वर्षों तक महात्मा गौतम संसार-सुखका अनुभव करते रहे। यशोधरा पर आपका असीम प्रेम था। कुछ दिनोंतक संसारके नूतन सुखमें उनका मन बँध गया था। इतना होनेपर भी जब-जब वे लोगों की सच्ची दशा देखते तब-तब वे विचार में निमग्न हो जाया करते थे। ज्योंही वे किसी की दीनावस्थाका अवलोकन करते त्योंही उनका मन दुःख से व्याकुल हो उठता और उन्हें अपने सुखका ज्ञान होने लगता था। वे इस विचारमें डूब जाया करते थे कि दया-शील परमात्मा ने सभी मनुष्योंको सुखी क्यों नहीं बनाया। अपने विलास-मन्दिरके ऊँचे प्रासादपर चढ़कर वे लोगोंकी दशाको देखा करते थे। सिद्धार्थ की उदासीनता देख कर यशोधरा और शुद्धोधन को परम दुःख होता था।

एक दिन महात्मा सिद्धार्थ अपनी वाटिका में विचार-मग्न बैठे हुए थे। इसी समय काषाय-वस्त्र धारण किये हुए एक यती उसी मार्गसे जा रहा था। सिद्धार्थ ने उसे अपने पास बुला-

कर पूछा, "महाराज आप कौन हैं? और किधर जा रहे हैं?" यतीने उत्तर दिया, "राजपुत्र, मैंने संसारका त्याग कर संन्यास धारण किया है। मुझे यह विश्वास हो चुका है कि सत्य-ज्ञान के सिवा किसीमें भी पूर्ण शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। जगत्का अज्ञान और विपत्ति देखकर मुझे खेद हो रहा है। ये लोग मोक्ष-मार्गका कुछ भी विचार नहीं करते। जो लोग मुझसे सहानुभूति-पूर्वक कुछ पूछते हैं, उन्हें मैं सन्मार्ग का उपदेश करता हूँ।"

इस प्रकार सिद्धार्थ और यतीकी बहुत देरतक बात-चीत हो चुकने पर यती आगे चला गया। जब से वह गया, तबसे सिद्धार्थ के मनमें अशान्ति फैल गई। आपने ऐहिक विषयोंकी ओर ध्यान देना छोड़ दिया। वे अपने विलास-मन्दिर के उपवनमें विचार-मग्न बैठ कर दिनके कई घण्टे बिता देते थे। यशोधरा को पुत्ररत्न हुआ था, इसलिए वह सदैव राज-महल के प्रसव-गृहमें रहा करती थी। जब गौतम उसके पास जाते तब वह उन्हें अपने पास बिठाल लेती थी और उनसे नाना प्रकार का वार्त्तालाप कर उनका मनोरञ्जन किया करती थी। "आपकी उदासीनताको देखकर मुझे दुःख होता है। आपके पास विपुल धन तथा ऐश्वर्य्य है। ईश्वरकी कृपासे अब आप एक पुत्रके पिता भी हो चुके हैं। अब आपको और किस वस्तु की आवश्यकता है? सच मानिए, सभी बातें आपके अनुकूल हैं। आप जैसा भाग्यशाली राजपुत्र इस संसार में और कौन है?" इस भांति अनेक

प्रकारसे वह आपका मन आकर्षण किया करती थी। पर गौतम की वृत्ति किसी योगीके समान नितान्त अचल रहा करती थी।

एक दिन रातको गौतमने छन्द नामक सारथीको अपना कंथक नामक घोड़ा सज्जित करनेके लिए कहा। आधी रातका समय था। सारे राज-प्रासादमें शान्ति व्याप रही थी और बाहर निर्मल चाँदनी छिटक रही थी। दास और दासियाँ पूर्णतया नींदके वशीभूत हो चुकी थीं। महलमें एक छोटासा दीपक टिमटिमा रहा था। उसके प्रकाशमें यशोधरा और उसके सुकुमार नन्हें बच्चे का चेहरा स्पष्ट दिखाई पड़ता था। वस्त्र इत्यादि पहन कर गौतम अपनी भार्य्याके कमरेमें आये और एक बार अपनी प्रिय पत्नी तथा प्यारे बच्चेकी ओर प्रेम पूर्ण दृष्टिसे देखने लगे। उन्हें देखकर आपके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। वे तनिक पीछे हटे। परन्तु मनका निश्चय पुनः दृढ़ करके आपने फिर एक बार अपनी पत्नी तथा पुत्रकी ओर देखा और राजमहल के बाहर प्रस्थान किया। बाहर उनके लिए छन्दने घोड़ा सुसज्जित करके रखाही था। गौतम उस घोड़े पर बैठ गये। एड़ लगातेही वह सुन्दर जानवर हवासे बातें करने लगा। छन्द भी एक घोड़ेपर सवार हो उनके पीछे-पीछे चल दिया।

चन्द्रमाका पूर्ण प्रकाश होनेके कारण उन्हें मार्ग स्पष्ट दिखाई दे रहा था। दिनका उदय होनेतक उन्होंने अपने घोड़ेको खूब दौड़ाया। ज्योंही सूर्य्यनारायण ने क्षितिजपर आगमन किया त्योंही गौतम भार्गवाश्रम नामक तपोवन में जा पहुंचे। वहाँ

अनमा-नदीके तटपर उनकी और छन्दकी भेंट हुई। गौतम को देखकर छन्दकी आँखें डबडबा आईं। उसने राजपुत्रके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और उनसे घर लौट चलनेके लिए बड़ा आग्रह किया। परन्तु सिद्धार्थने कहा, "प्यारे छन्द, मोक्षका सच्चा मार्ग ढूँढ़ने के लिए और अपनी आत्मा को चिर-शान्ति प्राप्त करानेके लिए, मैंने संसारका त्याग किया है और जब तक मैं इस प्रकारका कोई मार्ग न खोज लूँगा तब तक कपिलवस्तु नगरी में पैर भी न रक्खूँगा, यह मेरा दृढ़ निश्चय है। इस बातको ध्यानमें रखकर कि ऐहिक जीवन, संगति और सुख क्षणभङ्गुर है, मेरे पिता तथा मेरी स्त्री दोनोंको वृथा शोक न करना चाहिये।" इतना कहकर आपने अपने आभूषण और कपड़े छन्द को सौंप दिये। कन्थक पर हस्त-स्पर्श कर उसे धन्यवाद दिया। छन्दका समाधान कर उसे वहाँसे शीघ्र चले जानेकी प्रार्थना की। आपने एक सादा वस्त्र परिधान कर निविड़ अरण्यमें प्रवेश किया। राज-पुत्रकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखता हुआ छन्द कुछ समय तक स्तब्ध खड़ा रहा और जब गौतम उसकी दृष्टिके परे निकल गये तब उसने भी अपने गृहको प्रस्थान किया। कपिलवस्तु नगरी को लौट आनेपर छन्दने सब लोगोंको दुःख-सागरमें डूबा हुआ देखा। राजा शुद्धोधन और यशोधराके नेत्रोंसे आँसुओंकी नदियाँ बह रहीं थीं। उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया था, जिससे उनके शरीर म्लान और तेजहीन हो गये थे। मन्त्रिमण्डल तथा पुरवासियोंने उनका अनेक प्रकारसे समाधान करने की बड़ी चेष्टा

की। पर उसका कुछ भी परिणाम न हुआ। छन्दने बड़े दुःख से राजाको सिद्धार्थ का समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर राजाका दुःख और भी अधिक बढ़ गया। उनका हृदय शोकसे विह्वल हो उठा। राजाने अपने कुलगुरु तथा कुशल मन्त्रीजनों को बहुतसी सामग्री देकर उनसे गौतम को घर लौटा लानेकी प्रार्थना की। यह मण्डली उस घने जंगल में गई और वहाँ उन्होंने सिद्धार्थ की बड़ी खोज की। तब उन्हें वे एक वृक्षके नीचे ध्यानस्थ बैठे हुए दीख पड़े। उन्होंने आपसे कहा कि आपके लिए आपकी धर्म्म-पत्नी यशोधरा और आपके पिता राजा शुद्धोधन बहुत शोक कर रहे हैं। इस प्रकारकी और भी अनेक बातें कहकर उन्होंने आपका मन अपनी ओर आकर्षित करना चाहा। पर उनकी सारी चेष्टाएँ निष्फल हुईं। गौतमने कहा, "सत्य-धर्म्म के तत्त्वोंकी खोज करनेका मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है और उन्हें ढूँढ़ने के लिए मैं रात-दिन प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि इस कार्य्यमें मुझे सफलता प्राप्त होगई तो ठीकही है। अन्यथा, मैं अग्नि से दहकते हुए अङ्गारोंको भक्षणकर अपना प्राणविसर्जन कर दूँगा। परन्तु जब तक मैं उन तत्त्वोंका पता न लगा लूँगा, तबतक मैं कपिल-वस्तु नगरी में अपना मुँह न दिखाऊँगा।" आपके इस निश्चयात्मक भाषणको सुनकर सब लोग भौंचकसे रह गये और कपिलवस्तु को लौट आनेपर उन्होंने शुद्धोधन को सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

उस वनमें बोधिसत्वको कन्द-मूल-फल भक्षण करनेवाले

तथा स्वयं धोये हुए अनाजपर अपना निर्वाह करनेवाले कई मुनिजन और साधु पुरुष दीख पड़े। आपने नदी-प्रवाह में, सूर्य्य-प्रकाश में, अथवा अग्नि-वलयमें बैठकर तपश्चर्य्या करने वाले कई साधु पुरुषोंको देखा। उसी प्रकार पहाड़ोंकी भयंकर कन्दराओं में बैठकर तपश्चर्य्या करनेवाले कई साधु आपके दृष्टि-पथमें आये। उन सबका एक मात्र उद्देश यही था कि मृत्युके उपरान्त उन्हें सुखकी प्राप्ति हो। स्नान, सन्ध्या, होम, हवन इत्यादि करने वाले तपस्वियोंको और देह-दण्डनादि हठ-योग कर मोक्षकी इच्छा करनेवाले यतियोंको भी आपने देखा। आपने वेदान्तवादी, सांख्य-मतवादी इत्यादि लोगोंसे भी भेट की। उनके धर्म्म-तत्वोंका मननपूर्व्वक अध्ययन करके आपने उन लोगोंसे वाद-विवाद भी किया। जङ्गलमें रहते हुए आपका यही क्रम रहा करता था, कि जहाँ ऋषियों किम्वा तपस्वियों की जमघट रहती वहाँ वे जाते, उनसे मिलजुल कर, उनसे संभाषण कर, उनके मतोंको पूर्ण रीतिसे समझकर, उनपर विचार करते। फिर कुछ दिनोंतक उन लोगोंकी नाईं स्वयं अपना आचरण रखकर देखते थे कि आपके मनपर उसका क्या परिणाम होता है। इसके बाद वे अपनी शंकाओंको निर्भयता से उनके सामने उपस्थित करते थे। यदि वे आपकी शंकाओंका निवारण करनेमें असमर्थता प्रकट करते तो वे उनकी कृति तथा आचारोंको सदोष ठहराते थे। उनके मतों तथा उद्देशोंमें दोष बतलाकर वे दूसरे मतका अभ्यास किया करते थे।

इस प्रकार अनेक धर्म्म-तत्त्वोंका शोधन करते हुए वे लगभग पाँच-छः वर्षों तक भटकते रहे। इस प्रवास में आपको यह दीख पड़ा कि प्रचलित धर्म्मपर विश्वास, पूर्वपरम्परा पर विश्वास, रूढ़ि और आचार-विचार पर अन्धविश्वास रखकर, अपने आचारका सुधार करनेवाले मनुष्योंकीही संख्या अधिक है। आपको अच्छी तरह मालूम होगया कि कोई भी इस बातका ज़रा भी विचार नहीं करता कि प्रचलित धर्म्ममें सत्यका कितना अंश है, उसमें ग्राह्य क्या है, त्याज्य क्या है। आपने बड़ी सहानुभूतिके साथ और अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिसे सारे धर्म्म-मतोंका आकलन करना आरम्भ किया। जिन-जिन मुनिजनोंसे आपकी मुलाक़ात हुई उन-उनसे आपने जो कुछ आपको सीखना था, सब सीख लिया। कभी-कभी कंदमूलपर और कभी-कभी गावोंमें भीख माँगकर वे अपनी उपजीविका चलाया करते थे। धर्म्मकी चिन्ता में उनका मन सदैव डूबा रहा करता था। एकान्त में रहकर वे सदैव ध्यान-धारण किया करते थे।

एकबार भूखों रहकर आपने अपनी देह को ख़ूब कष्ट दिया था। यहाँ तक कि आसनसे उठने तककी आपमें ताक़त न बची थी। वे बिलकुल मरणासन्न होगये थे। उनकी इस दीन दशाको देखकर एक गड़रियेके लड़केने उनके मुँहमें बकरीके थन से निचोड़कर कुछ दूध डाल दिया। इससे उनको ज़रा ताक़त आगई और क्षुधासे अत्यन्तही पीड़ित होनेके कारण वे उस गड़रिये से और दूध माँगने लगे। परन्तु वह लड़का बोला,

"मुनिवर्य्य, मैं शूद्र हीन-जाति हूँ। इसलिए मेरा छुआ हुआ दूध आपके किसी काम का न रहेगा। इसीलिए बिना स्पर्श कियेही मैंने बकरीका थन आपके मुँह में निचोड़ दिया था। मेरे पास दूधसे भरा हुआ घड़ा मौजूद है। पर वह आपके क्यों कर काम आसकता है?" बोधिसत्वने कहा, "बाबा, जब मनुष्य जन्म लेता है उस समय उसमें उच्च और नीचका कोई भेद नहीं होता। जो सदाचारी है, वह उच्च है और जो दुराचारी है, वह नीच है। तू दयावान् है इसलिए मैं तुझे उच्च समझता हूँ।" इसी समय कुछ वेश्याएँ उस बनसे सितार बजाती और गाती हुई जा रही थीं। वे आपसमें कह रही थीं कि सितारको न बहुत ऊँची लगाओ; और न बहुत नीचीही। परन्तु उसे मध्यम लगाकर बजाओ जिससे मधुर-मधुर आवाज़ निकले। इन शब्दोंको शाक्य-मुनिने आकाश-वाणीही समझा। आपने उन पर विचार कर यह निश्चित्त किया कि शरीर को न तो विषयों से बिलकुल ग्रसितही रखना चाहिए और न उसे प्राणान्तकष्टही देना चाहिए। मनुष्यको चाहिये कि वह मध्य-मार्गको स्वीकार करे—यानी शरीर की रक्षाकर अपना ध्येय साधे। उस दिनसे आपने उपोषण इत्यादि से देहको कष्ट पहुँचाना बिलकुल छोड़ दिया।

धर्म्म-तत्त्वों का चिंतन करते समय महात्मा गौतम एक विशाल अश्वत्थ-वृक्षके नीचे बैठे थे। और आपने सत्य-धर्म्मको ढूँढ़े बिना वहाँसे न हटनेका दृढ़ निश्चय कर लिया था। इस तरह रात-दिन आसन पर बैठे हुए आपने धर्म्म-चिंतन में बहुत

समय बिता दिया। उन्हें प्रचलित धर्ममें बड़ी न्यूनता मालूम होती थी और उससे आपके मनको शान्ति प्राप्त न होती थी। इसी तरह विचार-निमग्न रहते हुए, अन्तमें, उन्हें सत्य-धर्मकी प्रतीति होगई, जिससे फिर आपको बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें जिस बातकी चिन्ता लगी हुई थी, वह अब सहसा जाती रही और आपका हृदय प्रकाशित हो उठा। वहाँसे वे बड़ी प्रसन्नता से चल दिये। जिस वृक्षके नीचे उन्हें यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ था उसे बोधिद्रुम कहते हैं। वह बुद्धगया में है। इसी समय से गौतम 'बुद्ध' अथवा ज्ञानवान् कहलाने लगे।

जब आपको यह मालूम हो चुका कि धर्माचरणके लिये देह-दण्डन और गृहत्यागकी आवश्यकता नहीं है, उस समय से आपने उनको निषेध करना शुरू कर दिया। आपने अपने सत्य-धर्मका प्रसार कर लोगोंका उद्धार करने और उसके लिए तन, मन, धनसे आमरण प्रयत्न करते रहनेका निश्चय कर लिया। वे जिन-जिन तपस्वियों और ऋषियोंके यहाँ पहले गये थे उन्हींके पास वे पहले गये, और उनपर अपने धर्म-तत्त्वोंको समझाकर प्रकट किया। इस कार्य्य में उन्हें वाद-विवाद भी करना पड़ता था। वे बड़ी कुशलता से वाद-विवाद किया करते थे। यहाँ तक कि अपने प्रतिपक्षियोंको अच्छी तरह समझा कर वे उनके मनको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया करते थे।

इस तरह आपने अपने साठ शिष्य बना लिये और उन्हें धर्मका उपदेश किया। धर्मके गहन विषयके ज्ञानको लोगोंमें

सुगमता से फैलानेकी इच्छा से आपने व्यावहारिक भाषामें उप-देश करनेकी प्रथा जारी कर दी। पहले आपने इन साठ शिष्योंका एक संघ निर्माण कर उन्हें अपने धर्म्म का अच्छी तरहसे उप-देश किया और लोगोंमें सत्य-धर्म्मका प्रचार करनेके लिए उन्हें देश-देशान्तरों में भेजा। वे स्वयं लोगोंको उपदेश करते हुए गाँव-गाँवमें घूमा करते थे।

बड़े-बड़े लोग उनका दर्शन करने आया करते और अत्यन्त आदरसे उनका उपदेश सुना करते थे। वे स्वयं बौद्धधर्म्मको स्वीकार करते और दूसरोंको भी उस धर्म्मका स्वीकार करनेके लिए बाध्य करते थे। कभी दृष्टान्तरूप कथाएँ कह कर, कभी वाद-विवाद कर, कभी सरल भाषा में और कभी व्यावहारिक उदाहरण देकर वे अपना उपदेश दिया करते थे। वे हमेशा अपने शिष्यों और मोक्ष की इच्छा करनेवाले लोगोंसे घिरे रहते थे। उनका बर्ताव, उनका वैराग्य, अप्रतिम था। उनके शिष्य-समुदायमें अनेक जाति और दर्जे के लोग शामिल थे। स्त्रियोंको उपदेश देकर उन्हें भी वे अपने धर्म्म में शामिल कर लिया करते थे। बड़े-बड़े प्रतापी राजा भी उनके उपदेशको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। आपको अपनी विद्वत्ताका कभी घमंड नहीं हुआ। वे अहंकार, मोह और कामविकार इत्यादिके पंजेमें कभी न फँसे थे। मदान्ध होकर आपने किसी का कभी बुरा न चाहा था। उनके शत्रुओंने कई बार आपको नाना प्रकार के कष्ट दिये पर आपने उन्हें अपने सौजन्यसे और अपनी क्षमाशील

वृत्तिसे लज्जित किया। यद्यपि आपने अपनी बाल्यावस्था तथा युवावस्थाको भोग और विलासोंमें व्यतीत किया था, तथापि शरीर को फटे-पुराने कपड़ोंसे ढाँप दरवाज़े-दरवाज़े भीख माँग कर अपनी उपजीविका चलानेमें तथा जंगलोंमें भूखे घूमने में आपको ज़रा भी दुःख नहीं हुआ। आपका स्वार्थ-त्याग, आपका वैराग्य और आपका शुद्धाचरण देखकर लोगोंके मनमें आपके प्रति पूज्य-भाव उत्पन्न होता था।

मनुष्यके नाना प्रकारके दुःखोंका कारण विषयवासना है। इसलिए जबतक उनका त्याग न कर दिया जाय तबतक निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। धर्म्म के लिए शुद्धाचरण एक ज़रूरी बात है। ईश्वर की आराधना करनेसे अथवा उसे प्रसन्न रखने से कदापि मोक्ष नहीं मिलती। पर मोक्ष प्राप्त करनेके लिए मनुष्य को विषय-वासनाओंका दमन कर शुद्ध-आचरणही रखना पड़ता है। धर्म्माचरणके लिए मनोनिग्रह की अत्यंत आवश्यकता है। इस लिए आर्य्य-सत्य-चतुष्टय का ज्ञान पहले होना चाहिए।

(१) विपत्ति का अस्तित्त्व (२) विपत्तिका कारण (३) विषय-वासनाओंसे मुक्ति (४) और विपत्तिसे मुक्त होनेके लिए अष्टाङ्ग मार्गका अवलम्बन, इन चार आर्य्य-सत्योंको आर्य्य-सत्य-चतुष्टय कहते हैं। इन्हींसे बुद्धकी प्रथम ज्ञान-शक्ति जाग्रत हुई। आपको विश्वकी विपत्तियोंका ज्ञान होकर निर्वाण-मार्ग सूझ पड़ा। देह यातनामय है; सभी जगह दुःख है। सारा संसार यातनाओंसे

भरा पड़ा है। दुःखकी जड़ क्या है और वह कहाँ है, इसको खोज करो। तृष्णा और आसक्ति दुःखकी जड़ है। दुःखरूपी पदार्थ को सुखदायी समझकर तुम व्यर्थ उसके पीछे पड़ रहे हो। सब लोग काल्पनिक सुखका उपभोग लेनेकी कोशिश कर रहे हैं। आसक्तिसे मनुष्य अहङ्कारमय हो जाता है, वह बिलकुल विवेक-हीन बन जाता है, वह विपत्ति की शृङ्खलामें पूरे तौरसे जकड़ जाता है। इस संसार की विविध विपत्तियोंको ढूँढ़ो, और उनके पंजे से छुटकारा पानेकी चेष्टा करो। मृगजल के पीछे दौड़ने वाले हरिनकी नाईं अन्धे बनकर सुख-प्राप्तिके लिए न दौड़ो।

अष्टाङ्ग मार्ग—(१) सत्य दृष्टि, (२) सत्य संकल्प, (३) सत्य भाषण, (४) सत्य कर्म्म, (५) सत्य जीवित कर्म्म, (६) सत्य प्रयत्न, (७) सत्य विवेक और (८) सत्य एकाग्रता। महात्मा बुद्ध इन अष्टविध मार्ग-सूत्रोंका विवेचन कर उन्हें अच्छी तरहसे लोगोंके दिलमें जमा दिया करते थे। 'आर्य्य-सत्यचतुष्टय, और 'अष्टाङ्गमार्ग' ये बुद्ध प्रणीत धर्म्म के मुख्य तत्त्व हैं। इनके सिवा आपने अपने शिष्योंको समय-समयपर और भी कई तरह के नीति-तत्त्वोंका उपदेश किया। आपने अपने धर्म्म के तत्त्वोंको किसी भी पुस्तक में लिख न रखा था। परन्तु वे उन्हें अपने शिष्योंको बारम्बार बतलाया करते थे। इन उपदेशोंको हृदयमें धारण कर उनके शिष्य लोगोंको उपदेश दिया करते थे। महात्मा बुद्ध के शिष्यों की संख्या बढ़ गई। आपने अनेक छोटे-छोटे सङ्घ निर्माण किये।

वे आठ महीने देश-देशान्तरोंमें उपदेश करते हुए घूमा करते थे और चार महीने बुद्धके पास रहकर उनसे धर्म्म-सम्बन्धी विशेष वार्त्तालाप किया करते अथवा उनसे अपनी शंकाओं का निवारण करा लिया करते थे। इस तरह वे महात्मा बुद्धका उपदेश श्रवण कर अपने ज्ञानको विशेष रीतिसे बढ़ा लिया करते थे।

महात्मा बुद्धने राजा विम्बसारको अपने धर्म्मकी दीक्षा दी। आपने अपनी प्रिय पत्नी यशोधरा और माता प्रजापति को उपदेश देकर अपने धर्म्मका अनुगामी बनाया और तभीसे स्त्रियोंको उपदेश देकर उन्हें भिक्षुकणी बनानेकी चाल निकल पड़ी। अपने चचेरे भाई देवदत्त, आनन्द और पुत्र राहुल को भी आपने अपने धर्म्ममें शामिल किया। जिस समय महात्मा बुद्ध लोगोंको उपदेश देनेके लिए कपिलवस्तु गये थे, उस समय बस्ती में वे भीख माँगते हुए घूमा करते थे। आपको भीख माँगते हुए देखकर, राजा शुद्धोधन को बहुत बुरा मालूम हुआ। तब आपने अपने पिताकी सान्त्वना की और यह कह कर कि मुझे भीख माँगनीही चाहिए, आपने भीख माँगनेका अपना क्रम उसी तरह जारी रखा। इस बातसे महात्मा बुद्ध के नीति-धैर्य्यका उत्तम रीतिसे पता चलता है।

एक बार किसी ब्राह्मणने कुत्सित बुद्धि से गौतम से पूछा कि, "ब्राह्मण किसे कहना चाहिए।" इसपर बुद्धने यह जवाब दिया कि, "जो सदाचारी है, जिसने अपनी पापवासनाओंका उच्छेदन कर स्वयं पर जय प्राप्त करली है, वही ब्राह्मण है। केवल

ब्राह्मण के कुलमें जन्म लेनेसेही कोई मनुष्य ब्राह्मण नहीं हो जाता।" एक वार किसी गाँवमें महामारीने वड़ा ऊधम मचाया था। उसके मारे लोग धड़ा-धड़ मरने लगे थे। वहाँके निवासियोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। उन्हें अपना कर्त्तव्य तक ज्ञात न होता था। इसी अवसर पर महात्मा वुद्ध अपने ढाई सौ शिष्योंके साथ उस गाँवमें गये। और वहाँ लोगों का औपधोपचार कर उनकी वड़ी सेवा-शुश्रूषा की। अन्धों और लँगड़ों की रक्षा की। वे यह कहा करते थे कि दूसरेका हित करना धर्म्मका मुख्य भाग है। वे अनेक प्रकारकी तन्त्र-मन्त्र-विद्याओंका तथा भूत-भविष्य इत्यादि ज्योतिष-विद्या का हमेशा निषेध किया करते थे।

पिताकी मृत्युके समय महात्मा वुद्ध उन्हीं के यहाँ थे और आपने उस समय की लौकिक रीतिके अनुसार पिताका क्रिया-कर्म्म अच्छी तरहसे सम्पन्न किया। महात्मा वुद्ध अपने शिष्योंके साथ पावा नामक गाँवमें आये। वहाँ आपको चन्द नामक एक शिल्पकार ने भोजनोंके लिए निमंत्रित किया। इस भोजनमें उसने सुअर के गोश्त का भी कुछ पदार्थ वनवाया था। इस पदार्थंको उसने महात्मा वुद्धकी सेवा में वड़ी श्रद्धाके साथ अर्पण किया। जव महात्मा वुद्धको कोई भक्तिके साथ कुछ अर्पण करता तो वे उसको अवश्य स्वीकार कर लिया करते थे। ठीक वही हाल यहाँ भी हुआ। महात्मा वुद्ध उस पदार्थंको खा तो गये पर उसे पचा न सके। वे आमाशय रोगसे पीड़ित होकर वीमार

हो गये और इसी बीमारीसे कुशी नामक गाँवके पास, ईसाके लगभग ५४३ वर्ष पहले, आपका देहावसान हो गया। महात्मा गौतम की मृत्यु का वृत्तान्त चारों ओर फैल गया। इसे सुनकर कई शिष्य वहाँ जमा हो गये। बड़े-बड़े राजा और महाराजा भी वहाँ आये। महात्मा बुद्धकी देह फूलोंसे आच्छादित की गई। चन्दन, कपूर इत्यादि सुवासित पदार्थों से एक चिता निर्माण की गई और बड़ी सज-धज के साथ आपका शरीर दहन किया गया। महात्मा गौतम बुद्ध की अस्थियाँ तथा उनकी चिता-भस्मको मुख्य-मुख्य शिष्यों और राजाओं ने आपसमें बाँट लिया और आगे चलकर उनपर बड़े-बड़े स्तूप (मन्दिर) बनवाये।

पहले यज्ञ और अन्य धर्म्म-विधियों का बड़ा प्रकाण्ड मचा हुआ था। यज्ञ में पशुओंकी हत्याएँ हुआ करती थीं। महात्मा गौतमने इन सब अत्याचारोंका घोर विरोध किया। पहले ब्राह्मणों तथा उच्चवर्ण के लोगोंमेंही धर्म्म का ज्ञान रहा करता था। परन्तु आपने अपने धर्म्म को प्रचलित भाषा में प्रतिपादित कर सब लोगोंके लिए बिलकुल सुगम बना दिया। वे जाति-भेदके विरुद्ध थे। भिक्षुओंके संघोंका निर्माण कर उनके द्वारा स्व-धर्म्म का प्रसार करानेकी प्रथा आपही ने निकाली। स्त्रियोंकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी, परन्तु महात्मा गौतम ने उसमें अंशतः सुधार कर दिया। वे यह कहा करते थे कि मनुष्यका श्रेष्ठत्व उसके जन्म पर निर्भर नहीं रहता, बल्कि, वह उसके आचरण से जाना जाता है। जातिभेद में आपने अनेकों प्रकारके निर्बन्ध डाले। आपने

लोगोंसे यह कहा कि मोक्ष-मार्ग के लिए नीति और सदाचारकी अत्यन्त आवश्यकता है और यही आद्य धर्म्म है। आपने मंत्र-तंत्रका निषेध किया। आपने यह प्रतिपादन किया कि स्वयं अपनी उन्नति के लिए तथा मोक्ष प्राप्त करनेके लिए देवतार्चन कर ईश्वरको प्रसन्न करना व्यर्थ है। तात्पर्य यह कि संसार में जो अनेक धर्म्मसंस्थापक हो गये हैं उनमें महात्मा गौतम बुद्धका दर्जा बहुत ऊँचा है। आपके धर्म्म-ग्रन्थोंका अध्ययन करना, उनका परिशीलन और मनन करना हमारा कर्त्तव्य है।

धर्म्मपद

अथवा

महात्मा बुद्ध-प्रणीत

नीति-बोध।
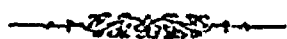
पहली सीढ़ी।

यमक (अथवा युग्म) वर्ग।

१। हमारी आज कल की दशा (सद्यःस्थिति) हमारे गत विचारों का (मनोभावों का) परिणाम है। वह हमारे विचारों पर अवलम्बित रहती है, वह हमारे विचारों की बनी रहती है। जिस तरह रथ खींचनेवाले बैल के पीछे रथका पहिया दौड़ता जाता है उसी तरह जो मनुष्य अपने

हृदय में कुबुद्धि धारण कर बातचीत करता है अथवा आचरण रखता है, उसके पीछे-पीछे दुःख दौड़ता जाता है।

२। हमारी साम्प्रत दशा हमारे गत विचारों का फल है। वह हमारे विचारों पर अवलम्बित रहती है। वह हमारे विचारों से बनी रहती है; मनमें शुभ हेतु अथवा सुविचार धारणकर जो मनुष्य अपना आचरण रखता है, उसके पीछे सुख छाया के समान सदैव बना रहता है।

३। उसने मेरी निर्भर्त्सना की, उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लुटा दिया—इस तरह के विचारोंको जो मनुष्य अपने हृदयमें स्थान देते हैं, उनका, उस मनुष्य से जो मनमुटाव रहता है वह सदा के लिये कदापि दूर न होगा।

४। उसने मेरा अनादर किया, उसने मेरा पराभव किया, उस ने मुझे मार दिया, उसने मेरा सर्वस्व छीन लिया—इस तरह के विचारों को जो मनुष्य अपने हृदयमें धारण नहीं करते उनकी उस मनुष्य से जो अनबन रहती है, वह सदा के लिये दूर हो जाती है।

५। क्योंकि, पुराना सिद्धान्त है कि शत्रुतासे शत्रुता कदापि नष्ट नहीं होती, पर वह प्रेम से नष्ट हो जाया करती है।

६। मूर्ख लोग इस बात का तो कभी ख़याल नहीं करते कि हम सब यहीं मरनेवाले हैं। परन्तु जो लोग इस बातको समझते हैं उनके झगड़े तुरन्त मिट जाया करते हैं।

७। जो मनुष्य केवल अपनेही सुख के लिये इस संसार में जीता है, जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता, जो भोजन करते समय नियमितता धारण नहीं करता, जो आलसी और दुर्बल है, उसको मार (काम) उसी समय इस तरह गिरा देता है, जिस तरह किसी कमज़ोर वृक्ष को प्रचण्ड झञ्झानिल नष्ट कर देता है।

८। जिस तरह शिलामय पर्वतको वायु का झकोरा नहीं गिरा सकता, उसी तरह जो मनुष्य अपनेही सुख की अपेक्षा धारण कर नहीं रहता, जिसने इन्द्रियों पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया है, जिसका भोजन नियमित रहता है, जो श्रद्धावान् और सबल होता है उसका मार (काम और मोह) बाल भी बाँका न कर सकेगा।

९। पाप का, कामादि विकारों का, क्षालन किये बिना जो पीत वस्त्रों को (भिक्षु वेश) धारण करने की इच्छा करता है, जो नियमितता और सत्य की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं देता, वह पीत वस्त्रों को धारण करने के लिये सर्वथा अयोग्य है।

१०। परन्तु जिसने अन्तःकरण की मलिनता को (पाप) दूर कर दिया है, जिसमें सारे सद्गुणों का पूर्ण रीति से विकाश हो चुका है, जो नियमितता और सत्य की ओर ध्यान देता है, वह पीत वस्त्रों को धारण करने के लिये बिल्कुल योग्य है।

११। जिन्हें असार वस्तु सारयुक्त जान पड़ती है और सार-युक्त निःसार मालूम होती है, वे मिथ्या दृष्टिका आश्रय लेते हैं। इसी लिये उन्हें सार (सत्य) कभी भी प्राप्त नहीं होता।

१२। जिन्हें सारवस्तु सारही मालूम होती है और असार असारही जान पड़ती है, वे सत्य वासनाओंका अनुसरण कर अपना आचरण रखते हैं। इसीलिये उन्हें सच्चा मार्ग प्राप्त होता है।

१३। जिस प्रकार अच्छी तरह न छाये गये घरमें वर्षा की बूँदों का प्रवेश हो जाता है, उसी प्रकार अविचारी मनमें वि-कारों का (अभिलाष, आसक्ति आदि का) प्रवेश हो जाता है।

१४। अच्छी तरह छाये गये मकान में जिस तरह वर्षा की बूँदें प्रवेश नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार पूर्ण विचार-शील मनमें विकारों का (अभिलाष, आसक्ति आदि का) प्रवेश नहीं हो पाता।

१५। बुरे कामों को करनेवाला मनुष्य इस लोकमें दुख पाता है और परलोक में भी दुःख का भाजन बनता है। वह दोनों लोकोंमें क्लेश पाता है। अपने दुष्कर्म के बुरे परि-णामों को देखकर उसे शोक-दुःख होता है।

१६। सदाचारी (पुण्य कर्म करने वाले) मनुष्य को इस लोकमें आनन्द होता है और परलोक में भी वह आनन्द का

उपभोग लेता है। दोनों लोकोंमें वह आनन्द-सागर में मग्न रहता है। अपने कर्म के शुद्ध फलों को अवलोकन कर उसे सन्तोष तथा आनन्द मालूम होता है।

१७। दुराचारी (पापी) मनुष्य इस लोक में दुःख पाता है और परलोक में भी। वह दोनों लोकों में क्लेशका भागी बनता है। अपने किये हुए बुरे कर्मों को देख कर उसे दुःख होता है और जिस समय वह बुरे कामों को करने में प्रवृत्त होता है, उस समय तो उसके दुःख का ठिकाना नहीं रहता।

१८। सदाचारी मनुष्य को इस लोकमें भी सुख होता है और परलोक में भी। वह दोनों लोकों में सुख का अनुभव लेता है। अपने किये हुए सत्कर्मों को देख कर उसे आनन्द होता है और उन्हें करते हुए उसे जो सुख होता है, वह पहले सुख की अपेक्षा कहीं अधिक है।

१६। अविचारी मनुष्य ने बौद्ध-शास्त्र (संहिता) का कितना भी पारायण क्यों न किया हो, परन्तु प्रमत्त होकर यदि वह अपना आचार उसके अनुसार नहीं रखता, तो उसे ठीक उसी तरह श्रमणत्व (आचार्यत्व—श्रेष्ठत्व) प्राप्त नहीं होता, जिस तरह दूसरे की गौओं को गिननेवाले चरवाहे को वे गौएँ प्राप्त नहीं होतीं।

२०। जिसने राग, द्वेष और मूर्खता का त्याग कर दिया है, जिसे सत्य-ज्ञान और मन की शांति प्राप्त हुई है, जो इस

संसार की किसी भी वस्तु के सम्बन्ध में तथा परलोक के सम्बन्ध में कुछ भी चिन्ता नहीं करता, वह धर्मशील है। ऐसा धर्मशील मनुष्य, चाहे शास्त्रों का थोड़ासा भी पाठान्तर क्यों न करे, पर वह श्रमण (आचार्य) होने के बिलकुल योग्य है।
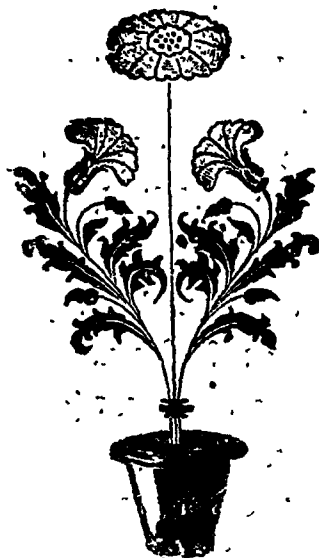
दूसरी सीढ़ी ।

अप्रमाद (दक्षता) वर्ग ।

२१ । दक्षना मोक्ष का रास्ता है । प्रमाद अथवा असावधानी मृत्यु का मार्ग है । जो दक्ष रहते हैं, वे शीघ्र नहीं मरते । जो असावधान होते हैं, वे मरे जैसेही हैं ।

२२ । इस बात को समझ कर जिन लोगों ने दक्ष रहने में ख़ूब उन्नति कर ली है, जिन लोगों ने दक्षता के अर्थ को पूरे नौर से समझ लिया है, उन्हें दक्ष रहने में आनन्द मालूम होता है, और श्रेष्ठ लोगों के (आचार्यों के) सच्चे ज्ञानमें उन्हें सुख मालूम होता है ।

२३ । इस तरह के विचारशील, अचल और स्पष्ट वृत्तिवाले विद्वान् लोगों को सर्वोत्तम सुख का देनेवाला निर्वाण प्राप्त होता है ।

२४ । जो दक्ष मनुष्य जाग्रत है, जो भूल नहीं जाता, जिसके कर्म शुद्ध हैं, जो विचारपूर्व्वक आत्मनिग्रह से अपना

आचरण रखता और धर्म्माचरण करता है, उस मनुष्य की कान्ति बढ़ जाती है।

२५। दक्षता-पूर्व्वक जागृति रख और आत्म-संयमन कर बुद्धिमान् मनुष्य अपने लिये एक ऐसा द्वीप निर्माण कर लेता है, जो किसी भी प्रकार के जलप्रलय से कदापि नष्ट नहीं हो सकता।

२६। मूर्ख लोग अहङ्कार के आधीन हो जाते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य दक्षता की एक अमूल्य रत्न की नाईं हिफ़ाज़त करता है।

२७। अहङ्कार न कर, काम-विषयादि सुखों में मस्त न रह। जो दक्ष और विचार-शील है, उसे विपुल सुख प्राप्त होता है।

२८। जिस प्रकार पर्वत्त की चोटी पर खड़ा हुआ मनुष्य नीचे मैदान में खड़े हुए मनुष्यों को देखता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य, जब दक्षता को धारण कर अहङ्कार को दूर कर देता है, तब वह ज्ञानरूपी प्रासाद के शिखर से स्थिर-चित्त होकर, मूर्ख और कर्म-रत जनसमूह की ओर देखता है।

२९। जिस प्रकार अच्छा घोड़ा दौड़में दुर्बल टट्टुओं के आगे निकल जाता है, उसी प्रकार जो अविचारी लोगोंमें दक्ष है और जो निद्रित मनुष्यों में जाग्रत रह कर बुद्धिमान् है, वह दूसरों से आगे बढ़ जाता है।

३० । दक्षता के कारण मघवन् (इन्द्र) सब देवताओं का स्वामी हुआ । लोग-बाग दक्षता की हमेशा प्रशंसा करते हैं और असावधानता की निन्दा करते हैं ।

३१ । इस बात में जिस भिक्षु को आनन्द मालूम होता है और असावधानी तथा अविचार से जो सदा भय खाता रहता है, वह अपने सब छोटे-बड़े बन्धनों को अग्नि के समान भस्म कर डालता है ।

३२ । जिस भिक्षु को विचार में आनन्द मालूम होता है और अविचार से जो सदा डरता रहता है, उसे अपनी पहली दशा से भ्रष्ट हो जाने का डर नहीं रहता । वह निर्वाण-पद (मोक्ष) के क़रीब पहुँच जाता है ।

तीसरी सीढ़ी ।

चित्तवर्ग ।

३३ । जिस तरह लुहार बाणों को ठीक करता है, उसी प्रकार पण्डित अपने अस्थिर, चञ्चल और सम्हालने के लिये कठिन चित्त को स्थिर करता है ।

३४ । पानी से निकाल कर सूखी धरती पर डाल देने से जिस

तरह मछली पुनः अपने मूल स्थान पानी में जाने के लिये छटपटाती है, उसी तरह मार (मोह) के पंजे से छुटकारा पाने के लिये हमारा चित्त भी तड़फता है।

३५। जिसका आकलन करना कठिन है, जो चपलता से पूर्ण है और सदैव स्वच्छन्दता से विहार करने वाला है, उस मन को वशीभूत करना अच्छा है। वश किये गये मन से सुख मिलता है।

३६। बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि वह अपने मनको अपने अधीन रखे। क्योंकि वह अदृश्य है और स्वच्छन्दता से विहार करने वाला है। मनको अपने अधीन रखने से सुख-प्राप्ति होती है।

३७। वायुरूपी, स्वच्छन्दता एवम् अकेले भ्रमण करनेवाले और अन्तःकरण की कन्दरा में छिप कर रहनेवाले मन को जो मनुष्य अपने वश में रखता है, वह मार (मोह) के पाशसे मुक्त हो जाता है।

३८। जिसका चित्त अस्थिर है, जो यथार्थ धर्म से अपरिचित है, जिसके मन की शान्ति का भङ्ग हो गया है, उसका ज्ञान कभी भी पूर्णत्व-दशा को न पहुँचेगा।

३९। जिस मनुष्य के विचार कलुषित नहीं हुए हैं, जिसका मन, अकुलाहट से रीता है, जिसने पाप और पुण्य का

विचार करना छोड़ दिया है—ऐसा मनुष्य यदि जागृत है, तो उसे कुछ भी भय नहीं है।

४०। यह सोच कर कि यह शरीर घटके समान कड़ा है और क़िले के समान मनको मज़बूत करके मनुष्य को चाहिए कि वह अपने ज्ञान-रूपी शस्त्रसे मार पर (वासनाओं पर) चढ़ाई करे। यदि उसपर जीत भी हासिल कर ली, तो भी उस पर सदा दृष्टि रखनी चाहिए। कभी भी असावधान न रहना चाहिये।

४१। अरेरे, थोड़े ही समयमें यह शरीर निरुपयोगी लकड़ियोंके लट्ठोंके समान तुच्छ और चेतनाहीन होकर ज़मीनपर गिर पड़ेगा।

४२। एक वैरी दूसरे वैरीका जितना नुक़सान करेगा, किम्वा शत्रु शत्रुका जितना नुक़सान करेगा, उसकी अपेक्षा कुमार्गमें रत हुआ अपना मन अधिक नुक़सान करेगा।

४३। सन्मार्ग पर चलनेवाला मन हमारा जितना कल्याण करेगा, उतना कल्याण तो हमारे मातापिता तथा दूसरे सम्बन्धी भी न करेंगे।

चौथी सीढ़ी।

पुष्पवर्ग।

—*—

४४। पृथ्वी, यमलोक और देवलोकको कौन जीत सकता है? जिस प्रकार चतुर मालाकार सुन्दर पुष्पोंको चुनता है, उसी प्रकार सदाचारका सच्चा मार्ग कौन ढूँढ़ निकालेगा?

४५। जो साधक है, वह पृथ्वी, यमलोक और देवलोकको जीतेगा। जिस प्रकार चतुर मनुष्य उत्तम फूलोंको खोज निकालता है, उसी तरह साधक सदाचारके सच्चे मार्गको ढूँढ़-निकालता है।

४६। जो इस बातको जानता है कि यह शरीर बुलबुलेके समान क्षण-भरमेंही नष्ट होनेवाला है और जो यह समझता है कि वह मृगजलके समान है, वह मारके (कामके) पुष्पशरका छेदन करेगा और उसे यमराजसे भेट होनेकी वारी न आवेगी।

४७। जिस तरह निद्रामें गर्क रहनेवाले ग्रामको बाढ़ बहा ले

जाती है, उसी प्रकार जो मनुष्य पुष्प चुननेमें गर्क है, उसे मृत्यु ले जाती है । *

४८ । फूल चुननेमें गर्क रहनेवाले मनुष्यको, उसकी वासनाएँ तृप्त होनेके पहलेही, मृत्यु अपने हस्तगत कर लेती है ।

४६ । फूलको तनिक भी दुःख न देकर, उसके रङ्ग और उसकी सुगंध का ज़रा भी नाश न कर, जिस तरह भौंरा उसका पराग ले कर निकल जाता है, उसी तरह साधुओंको अपने ग्राममें रहना चाहिये ।

५० । दूसरोंके दोष, बुरे काम तथा असावधानता को ढूँढ़नेकी अपेक्षा हमें प्रथम स्वयं हमारेही दुष्कर्मों और आलस्यकी ओर ध्यान देना चाहिए ।

५१ । जिस तरह सुन्दर और सुडौल फूल गन्ध-रहित होनेसे व्यर्थ है, उसी तरह जो अपने कथनानुसार अपना आचार नहीं रखता, उसके शब्द, कितने भी मधुर क्यों न हों, निष्फल ही हैं ।

५२ । परन्तु जिस तरह सुन्दर और सुडौल फूल सुगन्ध-युक्त होनेसे उत्तम है, उसी तरह जो अपनी बात पर चलता है, उसके मधुर शब्द सफल हैं ।

५३ । जिस तरह फूलोंके ढेरसे अनेक प्रकारकी मालाएँ बनाई

---

* सुखोंका उपभोग लेनेमें जो मनुष्य लीन हो गया है, उसकी विषय-वासनाएँ तृप्त होने के पहलेही मृत्यु उसे ले जाती है ।

जा सकती हैं, उसी तरह मनुष्यको जन्म धारण करतेही खूब सत्कृत्य करना चाहिए।

५४। फूलोंकी वास वायुकी दिशाके विरुद्ध नहीं फैलती, चन्दन की भी नहीं जाती और मल्लिका (मोंगरा) की भी नहीं जाती। परन्तु जो सज्जन हैं, उनका कीर्ति-परिमल वायुकी दिशाके विरुद्ध भी वहता है। मनुष्यका अच्छापन सब जगह संचार करता है।

५५। चन्दन और गुलतेवरा, कमल और वासन्ती इन सबके सुवासोंकी अपेक्षा सद्गुणोंका सुवास अपूर्व है।

५६। चन्दन और गुलतेवराका सुवास क्षुद्र है। परन्तु जो सद्गुणी हैं, उनका सुवास इतना तेज़ होता है कि वह जहाँ देवता लोग रहते हैं वहाँ तक—उतने ऊँचे तक—पहुँचता है।

५७। जिनमें ये सद्गुण वास्तव्य करते हैं, जिनमें अविचार नहीं है, जो सत्य-ज्ञान के योगसे मुक्त होगये हैं, उनके सामने मार (काम) की विलकुल दाल नहीं गलती।

५८-५९ रास्ते पर फेंक दिये गये कूड़े-कचरे पर भी यदि कमल उत्पन्न होवे, तो वह जिस तरह मधुर, सुवासिक और मोहक होता है, उसी तरह कूड़े-कचरेके समान नीच और अज्ञानसे अंध हुए लोगोंमें स्वयं-प्रकाशित बुद्धका शिष्य अपने ज्ञानके योगसे शोभा पाता है।

पाँचवीं सीढ़ी।

बाल (मूर्ख) वर्ग।

६०। जिसे नींद नहीं आती, उसे रात बड़ी मालूम होती है; जो श्रमित होगया है, उसे मील बहुत लम्बा मालूम होता है; जिसे सच्चे धर्मकी जानकारी नहीं है, उस मूर्खको संसार विकट जान पड़ता है।

६१। यदि किसी यात्रीको उसकी अपेक्षा अच्छा अथवा उसीके समान कोई दूसरा यात्री न मिले, तो उसे चाहिए कि वह धीरजके साथ अकेलाही अपनी यात्राको तय करे। उसके लिए ऐसा करनाही अच्छी बात है। परन्तु मूर्खकी संगति करना ठीक नहीं।

६२। 'ये लड़के मेरे हैं, यह धन-दौलत आदि सम्पत्ति मेरी है'— आदि विचारोंके मनमें हमेशा उत्पन्न होते रहनेसे मूर्खके मनमें क्लेश होता है। यदि स्वयं उसपरही उसका अधिकार नहीं है, तो फिर वह लड़कों अथवा सम्पत्ति पर क्योंकर हो सकता है?

६३। जिस मूर्खको यह मालूम हो जाता है कि 'मैं मूर्ख हूं' वह कमसे कम उस समयके लिए तो बुद्धिमान् होता है। परन्तु जो मूर्ख अपने को बड़ा बुद्धिमान् समझता है, उसे लोग सचमुचमें मूर्ख कहते हैं।

६४। जिस तरह चम्मच को रसकी मिठास नहीं मालूम होती, उसी तरह मूर्खको, यद्यपि उसे जीवनभर तक बुद्धिमानों की संगतिका लाभ भी हुआ हो, तोभी सत्यकी जानकारी कभी नहीं होती।

६५। जिस प्रकार जिह्वाको रसकी रुचि मालूम होती है, उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको, अल्प काल तक भी सत्समागम का लाभ होतेही, उसी समय सत्य की जानकारी हो जाती है।

६६। जिन मूर्खोंमें बुद्धि नहीं होती, वे स्वयं अपनेही बड़े शत्रु होते हैं। क्योंकि वे जिन दुष्कर्मोंको करते हैं, उनके कड़वे फल उन्हें ही भोगने पड़ते हैं।

६७। ऐसे कर्मका करना ठीक नहीं, जिसके लिए आगे चलकर पश्चात्ताप होता है और अन्तमें जिसका फल हमें रोते हुए भोगना पड़ता है।

६८। ऐसे कर्मका करना उचित है, जिसके लिए मनमें पश्चात्ताप नहीं होता और जिसके फलका स्वीकार करनेमें आनन्द एवं समाधान होता है।

६९। दुष्कर्मके करनेपर, जब तक उसका फल नहीं मिलता तब

तक मूर्ख मनुष्योंको अपना कर्म शहद के समान मीठा मालूम होता है। परन्तु जब वही कर्म परिपक्व हो जाता है, तब मूर्खोंको उससे दुःख होता है।

७०। यदि कोई मूर्ख यतीके समान कई महीनोंतक दर्भ की पत्तियोंमें भोजन ग्रहण करे, तौभी वह ऐसे मनुष्य की एक आना भी बराबरी नहीं कर सकता, जिसने धर्म का अच्छी तरहसे मनन किया है।

७१। ताज़ा दुहा हुआ दूध जिस तरह एक दम नहीं बिगड़ जाता, उसी तरह बुरे कर्म का कड़वापन उसी समय नहीं जान पड़ता। राखमें जलती हुई अग्नि के समान प्रज्ज्वलित रहकर वह मूर्ख का पीछा नहीं छोड़ता।

७२। जब बुरा कृत्य बाहर निकलता है तब वह मूर्ख के शोक का कारण होता है। उससे उसका सिर्फ़ मानखण्डन ही नहीं होता, बल्कि, वह उसका सिर फोड़ता है।

७३। मूर्ख लोगही भिक्षुओंमें अग्रस्थान की, मठमें अधिपति की, और लोगोंसे पूजा की इत्यादि वृथा कीर्तिकी अपेक्षा करें।

७४। 'यह मैंने किया है, वह मैंने किया है'—यह गृहस्थ और भिक्षुको मालूम होने दो ; 'जो कुछ उन्हें करना-धरना हो, उन्हें चाहिए कि वे उसे मेरी आज्ञानुसार करें'—यह मूर्खको सोचने दो ; इसके कारण उसकी तृष्णा और उसका अहंभाव बढ़ता रहता है।

७५। सम्पत्ति प्राप्त करनेका मार्ग एक है और निर्वाण प्राप्त करनेका मार्ग दूसरा है। जो भिक्षु बुद्धका शिष्य है; उसे यह बात मालूम हो जानेपर वह सांसारिक यशकी इच्छा न करेगा और संसार से अलिप्त रहनेका यत्न करेगा।

छठी सीढ़ी।

पण्डित वर्ग।

७६। जो तुम्हें यह बतलाता है कि सच्चा भांडार कहाँ मिलेगा, जो तुम्हें यह बतलाता है कि कौनसी वस्तु ग्रहण की जाय और कौनसी छोड़ दी जाय, उस बुद्धिमान् मनुष्यके कथन को तुम स्वीकार करो। जो लोग ऐसे मनुष्यका उपदेश सुनेंगे, उनका कल्याणही होगा, अकल्याण कभी न होगा।

७७। उसे तुम्हें डाँट-डपट करने दो, उसे उपदेश करने दो, उसे अयोग्य बातोंका निषेध करने दो। इन कारणों से वह

सज्जनोंको प्रिय होगा, परन्तु दुर्जन उसका तिरस्कार करेंगे।

७८। दुष्ट जनोंसे मित्रता मत रक्खो। नीच जनोंकी संगति न करो। सज्जनोंसे मित्रता रक्खो। जो सत्पुरुष हैं, उन्हें अपने मित्र बनाओ।

७६। जो धर्म्म के तत्त्वोंका सेवन करते हैं, वे आनन्द से तथा शान्त चित्तसे रहते हैं। आर्य्यों (श्रेष्ठों) के द्वारा उपदेशित धर्मतत्त्वों से साधुओं को निरन्तर आनन्द होता है।

८०। नल अथवा नहर के खोदने वाले लोग पानी को चाहे जहाँ ले जा सकते हैं। बाण बनाने वाले लोग (लुहार) बाणोंको चाहे जैसा नवा देते हैं; बढ़ई लकड़ीके डूँड़को नवा देते हैं; परन्तु जो पण्डित हैं, वे स्वयं अपनेको मन-चाहता स्वरूप दे देते हैं। वे अपनी वृत्तिको चाहे जिस ओर झुका देते हैं।

८१। जिस प्रकार प्रचण्ड भूधर (पर्वत) वायु के झकोरेसे नहीं डगमगाता, उसी प्रकार मतिमान् लोग निन्दा अथवा स्तुतिकी तनिक भी परवा नहीं करते।

८२। जो बुद्धिमान् हैं, वे धर्म श्रवणके कारण गंभीर, निर्मल और शान्त सरोवर के सदृश शान्तचित्त होते हैं।

८३। कितने भी संकट क्यों न आ पड़ें तथापि सज्जन अपने आचरण-क्रमका परित्याग नहीं करते; वे बकझक नहीं

करते तथा सुखकी इच्छा नहीं रखते। वे न तो सुखके कारण फ लते हैं और न दुःख से दुःखित होते हैं।

८४। जो मनुष्य अपने तथा परायेके लिए पुत्र, सम्पत्ति और अधिकारकी इच्छा नहीं रखता; जो अयोग्य-मार्ग-जन्य स्वोत्कर्षकी वांञ्छा नहीं रखता, वह मनुष्य सज्जन, ज्ञानी और सद्गुणी है।

८५। संसारके उस पार तक (पूज्य स्थिति को) पहुँचनेवाले लोग वहुत थोड़े हैं; परन्तु किनारेपरही इधर-उधर भटकने वाले (संसारमें व्याप्त) लोगोंकीही संख्या अमित है।

८६। धर्म्मका पूर्ण उपदेश प्राप्त होनेपर जो तदनुसार आचरण रखते हैं, वेही दुस्तर मृत्यु-लोक पार करनेमें भी समर्थ होंगे (निर्वाण पदको पहुँचेंगे)।

८७-८८। वुद्धिमान् मनुष्यको अज्ञान स्थितिका परित्याग कर अच्छी स्थिति (भिक्षु-वृत्ति) धारण करनी चाहिए। गृह छोड़ गृहहीन होजानेपर उसे सौख्य-हीन एकान्त वासमें भी सुख मानना चाहिए। समस्त सुखोंका त्याग कर और 'मेरा' 'मेरा' न चिल्लाते हुए उसे सर्व मानसिक व्याधियोंसे अपना छुटकारा कर लेना चाहिए।

८९। जिनके मनमें ज्ञान के (सात) तत्त्व पूर्णतया जम गये हैं, जो किसी वस्तु में आसक्त न हो, मुक्त दशामेंही निज सौख्य मानते हैं और जो अपनी सम्पूर्ण वासनाओं का

दमन कर स्वयं प्रकाशित हैं—वे इहलोकमें भी मुक्त रहते हैं।

सातवीं सीढ़ी

अर्हत् (पूज्य) वर्ग ।

९० । जिसने जगत्-सम्बन्धी स्व-प्रवास पूर्ण कर लिया है, जिस ने दुःखका त्याग कर दिया है और सब बन्धनोंको तोड़ सब प्रकारसे अपनेको मुक्त कर लिया है, उसे भोक्तृत्व (दुःख) नहीं।

९१ । जिन्हें गृहमें सुख मालूम नहीं होता और जो पूर्ण विचार कर चुकने पर गृहका परित्याग करते हैं, उनका त्याग सरोवर छोड़कर चले गये हंसोंके समान है।

९२ । जिनके पास सम्पत्ति नहीं है, जो अभिमत आहार करते हैं और जिन लोगोंने अप्रतिबद्ध तथा शून्यमय निर्वाणकी जानकारी प्राप्त करली है, उनका मार्ग आकाशमें परिभ्रमण करनेवाले पक्षियोंके मार्गके समान दुराज्ञेय है।

९३। जिसकी तृष्णाएँ शान्त होगई हैं, जो विषयादि भोगोंमें निमग्न नहीं हुआ है, जिसने अप्रतिवद्ध तथा शून्यमय निर्वाणको जान लिया है, उसका मार्ग आकाशमें संचार करनेवाले पक्षियोंके मार्गके समान दुरज्ञेय है।

९४। जिसने किसी दृढ़ रँववाले घोड़े की नाईं निजेन्द्रियोंको आवद्ध कर लिया है, जिसे अहंभाव नहीं है और जिसकी वासनाएँ लुप्त होगई हैं, ऐसे मनुष्य की देवता भी स्पर्धा करते हैं।

९५। जो मनुष्य निज कर्त्तव्य करता है, जो पृथ्वी तथा इन्द्र-वज्रके समान सहिष्णु है, वह पंकरहित सरोवर की नाईं निर्मल है। वह जन्म-मरणके आवागमनसे मुक्त रहता है।

९६। सम्यक् (सत्य) ज्ञानके द्वारा जिसने मुक्ति प्राप्त करली है, और जो इस रीतिसे स्थिरचित्त (शान्त) होगया है, उसके विचार, उसके शब्द और उसके कर्म—ये त्रिविध द्वार शान्त होते हैं।

९७। जो भोला नहीं है, जो अज (अनिर्मित) को जानता है, जिसने सब पाश तोड़ डाले हैं, जिसने सब मोहोंका नाश कर दिया है, जिसने सब प्रकारकी आशाओंका त्याग कर दिया है, वह मनुष्य सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ है।

९८। शहरोंमें अथवा अरण्योंमें, गहरे जलमें अथवा सूखी धरती पर, जहाँ कहीं परम पूज्य (अरहंत) निवास करते हैं, वह स्थल आनन्दमय है।

९९। विरक्तोंको अरण्य आनन्ददायक मालूम होते हैं; जिस स्थानपर संसारको आनन्द नहीं होता, वहाँ विरक्तोंको आनन्द मालूम होता है। क्योंकि, वे सुखोपभोगोंकी बिल्कुल अपेक्षा नहीं करते।

आठवीं सीढ़ी।

सहस्र वर्ग।

१०० । हज़ारों शब्दोंसे परिप्लुत व्यर्थकी गपड़-चौदस सुनने की अपेक्षा बोध-युक्त एकही शब्द सुनना अच्छा है; क्योंकि उसके श्रवण करनेसे मनुष्यका अन्तरात्मा शान्ति को प्राप्त होता है।

१०१ । सहस्रों निरर्थक शब्दोंसे भरी हुई गाथा (कविता) के श्रवण करनेकी अपेक्षा उस कविता का (धर्म्म गाथा) का सुनना कहीं अच्छा है, जिसका एकही शब्द श्रवण करनेसे मनुष्यको शान्ति-लाभ होता है।

१०२ । निरर्थक शब्दोंकी सहस्रों कविताएँ मुखाग्र करनेकी अपेक्षा

धर्मके एकही शब्द को मुखाग्र करना अच्छा है; क्योंकि उसके श्रवण करनेसे मनुष्योंको शान्ति प्राप्त होती है।

१०३। जो मनुष्य सहस्र बार सहस्र लोगोंको युद्धमें पछाड़ता है, उसकी अपेक्षा वह मनुष्य सब विजयी लोगोंमें श्रेष्ठ है, जो स्वयं अपने ऊपर जीत हासिल कर लेता है।

१०४-१०५। दूसरे सब लोगोंको जीत लेनेकी अपेक्षा आत्मविजय उत्तम है। जिसने स्वयं अपने ऊपर जय प्राप्त कर ली है, जो सर्वदा आत्म-संयमन करता है, उसकी जयको देवता, गन्धर्व और मार (कामदेव) कालिमा नहीं लगा सकते।

१०६। महीनों सहस्रों आहुतियाँ देकर यदि लगातार सहस्रों वर्षों तक यज्ञ किया जाय, तो इस यज्ञकी अपेक्षा उस सत्पुरुषकी क्षणभर भी सेवा करना अधिक श्रेयस्कर है, जिसका अन्तःकरण सत्यज्ञानसे पूर्ण प्रकाशमान हो चुका है।

१०७। अरण्यमें रहकर यदि सहस्र वर्षों पर्यन्त अग्नि का पूजन किया जाय और यदि सत्य-ज्ञान से पूर्ण प्रकाशित अन्तः-करण वाले सत्पुरुष की क्षण-भरही सेवा की जाय तो सहस्र सालों तक किये गये यज्ञकी अपेक्षा सत्पुरुषकी अल्प-सेवाही अधिक श्रेयस्कर है।

१०८। पुण्य की प्राप्तिके लिए इहलोकमें किसी भी प्रकार की आहुतियाँ अथवा बलिदान दिये जायँ तोभी उन सबका रत्ती-भर भी मूल्य नहीं। जो सत्य-व्रत हैं, उन्हें सम्मान देकर उनकी सेवा करना सबसे अधिक श्रेयस्कर है।

१०६। जो वृद्धोंको सदा प्रणाम करता है और उन्हें पूज्य मानता है, उसे आयुष्य, सौन्दर्य, सुख और वल ये चार वस्तुएं विपुलता से प्राप्त होती हैं। *

११०। दुर्गुणी और विषय-लोलुप मनुष्य यदि सौ वर्षतक जीवित रहे, तो उस मनुष्यको अपेक्षा ऐसे मनुष्य का एक दिवस जीवित रहना भी अधिक अच्छा है, जो सदाचारी और विवेक-शील है।

१११। अज्ञान में इन्द्रियोंके आधीन रहकर जो मनुष्य सौ वर्षों-तक जीता है, उसकी अपेक्षा बुद्धिमान् एवम् विवेकशील मनुष्यका एक दिन जीना अधिक अच्छा है।

११२। आलसी और दुर्वल रहकर जो मनुष्य सौ वर्षोंतक जीवित रहता है, उसकी अपेक्षा ऐसे मनुष्यका एक दिन जीना ही अधिक अच्छा है, जिसने पूर्ण वल सम्पादन कर लिया है।

११३। आदि और अन्तका विचार न करते हुए जो मनुष्य सौ वर्षोंतक जीता है, उससे ऐसे मनुष्यका, जिसने यह अच्छी तरह जान लिया है कि आदि और अन्त क्या है, एकदिन जीनाही अधिक अच्छा है।

१११। शाश्वत-पद (निर्वाण) को न जानते हुए जो सौ सालोंतक जीता है, उसके जीवन की अपेक्षा ऐसे मनुष्यका एक

---

* मनु स्मृति में चार प्रकार के यश वतलाये हैं:—आयुष्य, विद्या, यश और वल।

दिनका जीवनही अधिक भला है, जिसे शाश्वत-पदकी पूर्ण जानकारी है ।

११५। जिस मनुष्य को सर्वोत्तम धर्म्मकी जानकारी नहीं, वह यदि सौ वर्षों तक भी जीवन धारण करे तोभी उसके इस दीर्घ जीवनकी अपेक्षा सर्वोत्तम धर्म्मके ज्ञाताका एक दिनका जीवनही अधिक अच्छा है ।

नवीं सीढ़ी ।

पाप वर्ग ।

११६। यदि किसीकी यह इच्छा हो कि मेरे हाथसे शीघ्रही कोई सत्कर्म होजाय तो उसे चाहिए कि वह बुरी बातोंसे अपने विचारोंको दूर रखे । यदि कोई सत्कृत्य आलस्यसे करता हो, तो उसके मनको बुरी बातोंसे आनन्द मालूम होने लगता है ।

११७। यदि कोई दुराचार करे, तो वह उसे पुनः न करे। दुराचारका फल दुःख है ।

११८। यदि कोई पुण्याचार करे, तो वह उसे पुनः करे ; उसके करनेमें आनन्द माने । पुण्याचरणका फल सुख है।

११९। जबतक दुष्कृत्यके फल नहीं मिलते, तबतक दुष्कृत्य के कर्त्ताको उससे सन्तोष मालूम होता है। परन्तु उसका बुरा कर्म जब परिपक्व होकर फल देता है, तब उसे मालूम होता है कि यह बुरा कर्म है।

१२०। जबतक सत्कृत्य के फल नहीं मिलते, तबतक सज्जनोंको भी बुरे दिन भोगने पड़ते हैं। परन्तु ज्योंही उसके सत्कर्म फलने लगते हैं, त्योंही उसे सुदिन प्राप्त होते हैं।

१२१। यह सोचकर कि हमें उससे (पापकर्मसे) कुछ भी उत्पात न होगा, कोई भी उसकी ओर दुर्लक्ष न करे। बूँद-बूँद पानीसे जिसतरह पानी का बर्तन भर जाता है, उसी तरह थोड़े-थोड़े पाप कर्मोंको करके मूर्ख पूर्ण पापी बन जाता है।

१२२। यह सोचकर कि पुण्यकर्मसे कुछ भी लाभ न होगा; किसी भी मनुष्यको उसकी ओर दुर्लक्ष नहीं करना चाहिए। बूँद-बूँद पानी से बर्तन भर जाता है। थोड़े-थोड़े पुण्यकर्मोंका संचय करनेसे ज्ञानी मनुष्य पुण्यशील बन जाता है।

१२३। जिस तरह वह व्यापारी, जिसके पास बहुतसा धन है, परन्तु साथी थोड़े हैं, अपने प्रवासमें धोकेका मार्ग

टालता है, अथवा जिसे अपना जीवन प्रिय है. वह जिस तरह विषको टालता है, उसी तरह मनुष्योंको दुष्कर्मों का त्याग करना चाहिए।

१२४। जिसके हाथमें घाव नहीं है, वह यदि विषको छुए तो कोई हानि नहीं ; क्योंकि जिस मनुष्यके घाव नहीं होता. उसे विषसे हानि नहीं होती। इसी प्रकार जो पापाचरण नहीं करता, उसे पाप नहीं होता।

१२५। हवामें धूल उड़ानेसे वह धूल जिस तरह उड़ानेवालेकेही मुँह पर आ गिरती है ; उसी प्रकार जो मूर्ख निरुपद्रवी. शान्त और निरपराधी मनुष्य को त्रास देता है, उसे उन दुष्कर्मों का फल स्वयंही भोगना पड़ता है।

१२६। कई एक लोग पुनर्जन्म पाते हैं. पापी नरकमें जाते हैं। जो पुण्यशील हैं, उन्हें स्वर्गप्राप्ति होती है। जो सर्व प्रकारके ऐहिक बन्धनोंसे मुक्त हैं, उन्हें निर्वाण प्राप्त होता है।

१२७। अन्तरिक्ष, समुद्र, गिरिकन्दरा और समस्त संसारमें ऐसा कहीं एक भी स्थान नहीं है. जहाँ मनुष्य अपने दुष्कर्मों से छुटकारा पा सके।

१२८। आकाश, समुद्र, गिरिकन्दरा और समस्त संसारमें ऐसा कहीं एक भी स्थान नहीं है, जहाँ मनुष्य मृत्युसे बच सकता हो।

———

दसवीं सीढ़ी।

दण्ड वर्ग।

१२६। सब मनुष्य दण्ड से डरते हैं। सब मनुष्य मृत्यु से डरते हैं ; ध्यान में रक्खो कि तुम भी उन्हींके समान हो और इसलिए हिंसा मत करो, और न किसीका संहार होने दो।

१३०। सब मनुष्य दण्ड से भय खाते हैं, सब मनुष्य अपने प्राण पर प्यार करते हैं ; ध्यानमें रखो कि तुम भी उनके समान हो और इसलिए वध मत करो, और न किसीका संहार कराओ।

१३१। जो मनुष्य हम लोगोंकी नाईं स्व-सुख की इच्छा रखने वाले प्राणियोंकी अपने सुखके लिए हिंसा करता है, उसे मृत्युके पश्चात् सुख न मिलेगा।

१३२। जो हम लोगोंके समानही स्व-सुख की इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको अपने सुख के लिए क्लेश नहीं देता अथवा उनकी हिंसा नहीं करता, उसे मृत्युके बाद सुख मिलेगा।

१३३। किसीसे कठोर भाषण मत कर। जिससे तू कठोर भाषण करेगा, वह तुझे उसी प्रकारका उत्तर देगा। क्रोध-युक्त भाषण दुःखदायक होता है। दण्ड पर दण्ड प्राप्त होनेसे उसका परिणाम शरीर पर होता है।

१३४। फूटे घंटेके समान मत बोल—असंबद्ध प्रलाप मत कर, जिससे तुझे निर्वाण-पद मिल जायगा। झगड़े-झाँसेसे तुझे सदा दूर रहना चाहिए।

१३५। जिस प्रकार चरवाहा अपनी लकड़ीसे गायोंके झुण्ड को गौशालामें हाँक ले जाता है; उसी प्रकार जरा और मृत्यु जीवित्व को हाँका करते हैं (मनुष्य के आयुष्य को हरण किया करते हैं)।

१३६। मूर्ख मनुष्य जब कोई दुष्कर्म करता है, तब वह उसे मालूम नहीं होता। परन्तु आगे चल कर आग से जले हुए की नाईं वह अपने दुष्कर्मों से जलता है।

१३७। जो निरुपद्रवी और गरीब मनुष्योंको दुःख देता है, उसे (नीचे बतलाई गई) दस दशाओंमेंसे एक न एक दशा तत्काल प्राप्त होती है—

१३८। (१) उसे अत्यन्त दारुण दुःख होगा।
(२) उसकी हानि होगी।
(३) उसे शारीरिक घाव होगा।
(४) असहनीय वेदनाएँ होंगी अथवा बुद्धिभ्रंश होगा।

१३९। (५) अथवा उसे राजदण्ड मिलेगा।

(६) अथवा उसपर भयंकर अभियोग लगाया जायगा।

(७) उसके सम्बन्धियोंका संहार होगा, अथवा—

(८) उसके धनकी हानि होगी।

१४० । अथवा (६) बिजली के गिरनेसे उसके घर जल जायँगे, और—

(१०) मृत्युके बाद वह मूर्ख नरक में जायगा।

१४१ । मनुष्यने जब तक वासनाओंका दमन नहीं कर दिया है, तब तक नग्न रहकर, जटा-जूट बढ़ाकर, मलिन रहकर, उपवास कर, देहमें भस्म पोतकर और समाधि लगाकर कभी भी उसकी चित्त-शुद्धि न होगी।

१४२ । अच्छे वस्त्रोंके धारण करनेपर भी जो शान्ति धारण करता है; जो स्थिरचित्त, जितेन्द्रिय, आत्मनिग्रही और पवित्राचरणी होकर भी दूसरोंके दोष नहीं निकालता अथवा उनकी निन्दा नहीं करता, वही सच्चा ब्राह्मण, श्रमण (साधु) अथवा भिक्षु (धर्मोपदेशक) है।

१४३ । जिस तरह तेज घोड़ेके लिए कोड़ेका काम नहीं पड़ता, उसी तरह क्या इस संसारमें इस तरहका कोई नम्र मनुष्य है, जो डाँट-डपट करनेके लिए दूसरोंको अवकाश नहीं देता ?

१४४ । अच्छा सिखाया हुआ घोड़ा कोड़े का स्पर्श होतेही अधिक चंचल और होशियार हो जाता है; उसी प्रकार

श्रद्धासे, सदाचार से, उत्साह से, ध्यान के योगसे और धर्मके परिशीलन से तुझे यह (शब्दप्रहारका) दुःख-वेग सहन होगा ; ज्ञान और आचारसे तू परिपूर्ण होगा।

१४५। नल किंवा नहर बनानेवाले लोग पानीको चाहे जहाँ ले जाते हैं ; बाण बनानेवाले लोग (लुहार) बाणोंको चाहे जैसा नवा देते हैं, बढ़ई लकड़ी के लट्ठोंको नवा देते हैं। परन्तु जो बुद्धिमान् हैं, वे स्वयं अपनेको चाहे जैसा बना लेते हैं। *

ग्यारहवीं सीढ़ी।

जरा वर्ग।

१४६। जब यह संसार निरन्तर दुःखाग्नि से भुन रहा है, तब यहाँ हँसी किस तरह आ सकती है और आनन्द क्योंकर प्राप्त हो सकता है ? तुम लोग अन्धकार में पड़े हुए हो। फिर प्रकाशकी खोज क्यों नहीं करते ?

१४७। घावोंके मारे विकल हुए, व्याधिग्रस्त, अनेक चिन्ताओं से

* यह श्लोक ८० वें श्लोक के समान है।

व्याप्त और निर्बल—ऐसे इस कपड़े पहने हुए गोलेकी ओर (बूढ़ेकी ओर) देखो !

१४८। कृश हुआ, व्याधिग्रस्त और क्षणभंगुर यह शरीर—यह दुष्कर्मोंका समूह—नाशको प्राप्त होगा। मृत्युसे जीव नष्ट होगा।

१४६। ये सफ़ेद हड्डियाँ बरसातमें फेंक दिये गये कद्दू के समान हैं। फिर इन्हें देखने में क्या सुख है?

१५०। हड्डियोंका क़िला बनाकर वह ख़ून और माँस से लीपा जाता है और फिर उसमें जरा और मृत्यु, गर्व और कपट वास करते हैं।

१५१। सज्जन लोग सज्जनोंसे यह कहा करते हैं कि राजाके सुन्दर रथका नाश होता है, शरीर भी नष्ट होता है; परन्तु जो सदाचारी हैं, उनके सद्गुणोंका कभी नाश नहीं होता।

१५२। जिस मनुष्यने अल्प ज्ञान सम्पादन किया है, वह बैलकी नाईं बूढ़ा होता है। उसका शरीर बढ़ता है; परन्तु उसका ज्ञान बिलकुलही नहीं बढ़ता।

१५३-१५४ * इस झोपड़ीके रचयिताकी खोज करते-करते उसकी

---

* संसार की विविध वासनाओं को मानों मार अथवा काम ही उत्पन्न करता है। इस कामदेव के पाश से छुटकारा पाने पर मनुष्य को सत्य ज्ञान प्राप्त होकर वह निर्वाण के निकट पहुँच जाता है। कामदेव के इस चक्कर में फँसे रहने के कारण मनुष्य को पुनर्जन्म धारण करना पड़ता है।

प्राप्ति होने तक मुझे अनेक जन्म लेने होंगे। बार-बार जन्म ग्रहण करना अत्यन्त दुःखदायक है। परन्तु, हे झोपड़ीके कर्त्ता! मैंने तुझे अब पूरा देख लिया है; यह झोपड़ी अब तू फिर न बाँधना। तेरे सब बाँस टूट गये हैं। तेरे लट्ठे टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। मन के शाश्वत निर्वाण-पदके समीप तक पहुँच जानेसे उसकी समस्त तृष्णाएँ लुप्त हो गईं हैं।

१५५। जिन्होंने योग्य शिक्षाके अनुसार व्यवहार नहीं किया है, और जिन्होंने युवावस्थामें किसी भी धन का संचय नहीं किया है, वे मछलियोंसे रहित सरोवर के तटपर रहनेवाले क्षीण बगुलेकी नाईं मर जाते हैं।

१५६। जिन्होंने योग्य शिक्षाके अनुसार व्यवहार नहीं किया है, और जिन्होंने युवावस्थामें धनका संचय नहीं किया है, वे भंग हुए धनुष की नाईं गत कालके लिए शोक करते हुए पड़े रहते हैं।

बारहवीं सीढ़ी।

आत्म (स्वतःसम्बन्धी) वर्ग।

१५७। यदि कोई मनुष्य स्वयं अपने ऊपर अत्यन्त प्रेम करता हो, तो उसे चाहिये कि वह चिन्ता-पूर्वक आत्मशोधन करता जावे। तीन * पहारोंमें (अवस्थाओंमें) से निदान एक पहारमें तो बुद्धिमान् मनुष्यको जागृत रहना चाहिये।

१५८। जो योग्य है, उसे मनुष्यको पहले स्वयं करना चाहिए और तदनन्तर वह लोगोंको उपदेश करे। ऐसा करनेसे बुद्धिमान् मनुष्यको दुःख न होगा।

१५६। मनुष्य दूसरोंको जिस तरहका आचरण रखनेका उपदेश करता है, उसी तरहका आचरण उसे स्वयं रखना चाहिए। पहले स्वतः पर अधीनता प्राप्त कर लेनेपर दूसरोंपर अधिकार प्राप्त कर लेनेमें कठिनाई नहीं पड़ती। स्वतःपर अधिकार प्राप्त कर लेना सचमुचमें बड़ी टेढ़ी खीर है—अत्यन्त दुष्कर है।

---

* तीन पहार—यानी बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था—इन तीन अवस्थाओं को तीन पहार कहा है।

१६०। मनुष्य स्वयं अपना स्वामी है, दूसरा स्वामी कौन हो सकता है? स्वत: पर स्वामित्व प्राप्त कर लेनेपर मनुष्यको ऐसा उत्तम स्वामी मिलता है कि जैसा दूसरोंको शायद् ही कभी मिलता हो।

१६१। जिस प्रकार हीरा मूल्यवान् पत्थरके टुकड़े करता है, उसी प्रकार स्वतः आचरण किया गया, स्वतः उत्पन्न किया गया और स्वतः बढ़ाया गया पाप मूर्खों को चकनाचूर कर डालता है।

१६२। जिस प्रकार वृक्षको बिलकुल लपेट डालनेवाली लता वृक्ष को नवा देती है, उसी प्रकार जो महान् दुष्ट है, वह—जिस दशामें उसका रहना शत्रु चाहता हो—उस हीन दशा में स्वयं अपनेको डाल लेता है।

१६३। दुष्कर्म्मों को और ऐसे कर्म्मों को करना, जो स्वयम् अपने लिए अत्यन्त अहितकारक और लांछनास्पद हैं, अत्यन्त सुगम होता है। परन्तु जो कर्म्म हितकारक और अच्छा है, उसे सम्पन्न करना बड़ा कठिन होता है।

१६४। जो मूर्ख पूज्य (अर्हत्), श्रेष्ठ (आर्य) और सदाचारी लोगोंकी आज्ञाका तिरस्कार करता है, और असत्य मतका अवलम्बन करता है वह कत्थक * नामक बाँसके फलों की नाईं स्वयं अपने नाशका कारण बनता है।

---

* कत्थक—बाँस की एक जाति होती है। जब इसमें फल लगते हैं तब यह यातो मर जाता है या फलों के लिए काटा जाता है।

१६५। मनुष्य स्वयम्ही पापकर्म्म करता है, और उसको भुगतान भी स्वयम् ही भोगता है। वह स्वयम् होकरही पाप-कर्म्मोंका त्याग करता है और स्वयम् ही अपनेको शुद्ध कर लेता है। शुद्धि और अशुद्धि ये हमारी हमेंही हैं। दूसरे को कोई भी शुद्ध नहीं कर सकता।

१६६। दूसरोंके कामके लिए—फिर वह कितना भी बड़ा क्यों न हो—हमें अपने काम को नहीं विसार देना चाहिये। जब मनुष्यको यह मालूम हो जाता है कि हमारा कर्त्तव्य क्या है, तब उसे चाहिए कि वह अपना कर्त्तव्य करने के लिए निरन्तर सावधान रहे।

तेरहवीं सीढ़ी।

लोक वर्ग।

१६७। हीन धर्म्मका अवलम्बन मत करो। अविचारसे मत चलो। असत्य उपदेशका अनुसरण मत करो। संसार से मित्रता मत रखो।

१६८। जागृत रहो। आलसी मत रहो। नीतिधर्म्माचरण करो। जो नीतिमान् है, वह इहलोक और परलोक दोनोंमें आनन्दपूर्व्वक रहता है।

१६९। पुण्याचरणके मार्गको स्वीकार करो। पापाचरणके मार्गको स्वीकार मत करो। जो सदाचारी है, वह इहलोक और परलोक दोनोंमें आनन्दसे रहता है।

१७०। समझ जाओ कि संसार बुलबुला अथवा मृगजलके सदृश है। जो संसारको इस प्रकार तुच्छ समझता है, उसकी ओर यमराज नहीं देखते।

१७१। आओ, और राजरथके समान चमकनेवाले संसार की ओर दृष्टि-पात करो। मूर्ख उसमें मस्त रहते हैं, परन्तु बुद्धिमान् उससे अलिप्त रहते हैं।

१७२। पहले के नशेका लोप होकर पीछेसे जो सावधान होता है—सुधमें आता है—वह मेघमण्डल से मुक्त हुए चन्द्रमा की नाईं संसारमें अपने प्रकाशको विस्तारित करता है।

१७३। जिसके पूर्व-दुष्कर्मों को भविष्यके सत्कर्म्मोंने ढाँप दिया है, वह मेघमण्डलसे मुक्त हुए चन्द्रमाके समान संसारको प्रकाशमान करता है।

१७४। जगत् अन्धकारमय है और यहाँ थोड़ेही लोगोंको दिखता है। जालसे छुटकारा पाये हुए पक्षियोंके समान थोड़ेही लोग इससे छुटकारा पाकर स्वर्गमें जाते हैं।

१७५। हंस सूर्यके मार्गसे जाते हैं। वे अपनी अद्भुत सामर्थ्यके

योगसे नभ-मण्डलमें संचार करते हैं। जो बुद्धिमान् हैं, वे मार (कामदेव) और उसकी सेनाको जीतकर इस लोकसे मुक्त होते हैं। *

१७६। जब मनुष्य एक धर्म्माज्ञाका उल्लंघन कर, असत्यभाषण करने लगता है और परलोककी हँसी उड़ाने लगता है, तब ऐसा एक भी पाप नहीं बच रहता जिसे वह न करे।

१७७। जो कंजूस होते हैं, वे देवलोकमें कभी नहीं जाते। जो मूर्ख होते हैं, वे उदारता की कभी प्रशंसा नहीं करते। परन्तु जो मनुष्य सुज्ञ है, उसे उदारतामें बड़ा आनन्द मालूम होता है और उससे वह परलोकमें सुखी होता है।

१७८। पृथ्वी पर राज्य करना, किम्वा स्वर्गलोक का राज्य प्राप्त होना, अथवा समस्त लोकोंका स्वामित्व सम्पादन करना—इन सबकी अपेक्षा 'स्रोत आपन्न' नामक निर्वाण की पहली सीढ़ीका लाभ होना अधिक श्रेयस्कर है।

---

* मनुष्यों को नाना प्रकार के मोहपाशों में बद्ध करने वाला मार—कामदेव—है और संसार की विविध प्रकार की वासनाएं मानों उसकी सेना है।

चौदहवीं सीढ़ी।
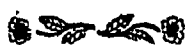
बुद्धवर्ग।*

१७९। जिसकी जयपर पुनः जय प्राप्त नहीं की जा सकती, जिसकी जयका श्रेय इस संसारमें कोई भी नहीं ले सकता, ऐसे उस बुद्ध को (सिद्धको), उस त्रिकालज्ञ को, उस अगम्य को तुम किस मार्गसे आगे ले जा सकोगे?

१८०। जिस पर वासना के पाशों, किम्वा आमिषका अधिकार नहीं चलता, अथवा जिसे वे कुमार्ग की ओर नहीं झुका सकते, उस बुद्धको, उस त्रिकालज्ञ को, उसं अगम्यको तुम किस मार्गसे आगे ले जा सकोगे?

१८१। जो बुद्ध (पूर्ण ज्ञानी) हैं, जो भूलके चक्करमें न पड़कर चिन्तनमें सदैव निमग्न रहते हैं, जो ज्ञान-सम्पन्न हैं और सर्व संग परित्याग कर जो शांतिसुखमें तल्लीन हैं, उनकी देवता लोग भी स्पर्धा करते हैं।

१८२। मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, मर्त्य मानवके जीवितका संरक्षण

---

* जो सिद्ध किम्वा पूर्ण ज्ञानी हो गये हैं।

करना दुर्लभ है, सद्धर्म्मका श्रवणगोचर होना दुर्लभ है, और बुद्धका जन्म-बुद्धत्व प्राप्त होना दुर्लभ है।

१८३। सब बुद्धोंका (सिद्धोंका) यही उपदेश है कि पाप मत करो, पुण्य करो, अपने चित्तको शुद्ध करो।

१८४। बुद्धका कथन है कि सबमें महान् प्रायश्चित्त क्षमा है, दृढ़ सहनशीलताही निर्वाण है। जो दूसरोंको मारता है, वह प्रव्रजित (यती) नहीं, जो दूसरोंको मर्मभेदी वाक्य कहता है, वह श्रमण (साधु) नहीं है।

१८५। बुद्धका आदेश है कि दूसरोंपर दोष मत मढ़ो, दूसरोंको मत मारो, धर्म्माज्ञाके अनुसार निग्रहपूर्व्वक आचरण रखो, मिताहार करो, एकान्तमें सोओ और बैठो, और सदैव उच्च विचारोंमें निमग्न रहो।

१८६। सुवर्ण मुद्रिकाओं की झड़ी लग जानेपर भी लोभ की तृप्ति न होगी। वही बुद्धिमान् है, जो यह जानता है कि लोभ से, किम्वा कामसे प्राप्त हुआ सुख क्षणभंगुर और दुख-दायी है।

१८७। जिस शिष्यको (साधक को) पूर्ण ज्ञान हो चुका है, उसे स्वर्ग-सुखमें सन्तोष नहीं मालूम होता, किन्तु समस्त वासनाओंके नाश करनेमेंही उसे आनन्द मालूम होता है।

१८८। भीतिसे भयभीत होकर लोग जङ्गलोंमें, पहाड़ोंमें, झाड़ोंकी

कोठोंमें तथा पवित्र चैत्यके * तले आश्रय लेनेके लिये जाते हैं।

१८६। परन्तु वे स्थान सुरक्षित नहीं, वह आश्रय सर्वोत्तम नहीं। क्योंकि वहाँपर आश्रय लेनेसे मनुष्योंका सब दुःखोंसे छुटकारा नहीं होता।

१६०। जो मनुष्य बुद्ध, धर्म्म और संघ इस त्रिसरणिका आश्रय करता है; वह (नीचे दिये गये) चार पवित्र वचनोंको पूर्णतया जानता है,—

१६१। आर्यसत्यचतुष्टय—(१) दुःख, (२) दुःखका मूल, (३) दुःखका अन्त और (४) दुःख-शमन करनेके अष्टांग मार्ग। अष्टांग मार्ग—(१) सत्य-दृष्टि, (२) सत्य-संकल्प, (३) सत्यवाचा, (४) सत्यकर्म्म (५) सत्य-जीवन, (६) सत्य व्यायाम (७) सत्य-स्मृति और (८) सत्य-समाधि। ¶

१६२। जिस आश्रयके लेनेसे मनुष्य को समस्त दुःखों से मुक्तता हो सकती है, वही आश्रय सुरक्षित एवम् सर्वोत्तम है।

---

* चैत्य—अस्थि, दाँत, रक्षा इत्यादि बुद्ध-शरीर पर बाँधे गये मंदिर।

¶ आर्य-सत्य-चतुष्टय और अष्टांग-मार्ग ये दो बुद्ध-प्रणीत महान् सिद्धांत हैं। इन्हीं धर्मतत्त्वों का दृष्टांत होने पर बुद्धके मन को शांति प्राप्त हुई। इन्हीं मूल तत्त्वों पर आगे चल कर आपने अपना धर्म्म प्रस्थापित किया। प्रथम दुःख के मूल को खोज करके निकालना चाहिये और बाद सत्य-संकल्प और सत्य आचार-विचार का अवलम्बन करना चाहिए। तभी मुक्ति किम्वा निर्वाण प्राप्त होता है।

१६३। बुद्ध-पदको पहुँचा हुआ अलौकिक पुरुष मिलना कठिन है : वह सब जगह जन्म नहीं लेता। जिस कुल में ऐसे साधु पुरुषका जन्म होता है, वह कुल धन्य है।

१६४। बुद्धका जन्म सुखकारक है, सद्धर्मका उपदेशं सुख-कारक है, संघकी शान्ति सुखदायक है, जो शान्तिमय हैं उनकी भक्ति (सेवा) सुखदायक है।

१६५-१६६। जो पूज्यकी—फिर वे बुद्ध (ज्ञानी) हों, किम्वा उनके शिष्य हों—सेवा करता है, जो ऐसे मनुष्यकी सेवा करता है, जिसने अनेक प्रकारके दुष्ट कर्म्मों पर जय प्राप्त कर ली है, जिसे निर्वाण प्राप्त हो गया है और जिसे किसी भी प्रकार का भय नहीं बच रहा है, उस मनुष्यके पुण्योंकी गिनती कोई न लगा सकेगा।

पन्द्रहवीं सीढ़ी।

सुख वर्ग।

१६७। जो हमसे द्वेषभाव रखते हैं, उनसे द्वेषभाव रखना छोड़ कर हम आनन्द में रहें। जो हमारा द्वेष करते हैं, उनसे वैर न रखकर हम आनन्द में रहें।

१६८। विषय-ग्रस्त लोगोंमें, हम विषयोंसे मुक्त होकर आनन्द-

पूर्व्वक रहें। जो व्याधि-ग्रस्त हैं उनमें, आओ, हम व्याधिमुक्त होकर आनन्दपूर्व्वक रहें।

१९९। आओ, हम अनुरक्त लोगोंमें रागहीन होकर आनन्दपूर्व्वक रहें। आसक्त लोगोंमें हम आसक्ति-विहीन होकर आनन्द से विचरें।

२००। हमारा कुछ भी नहीं है—यह कहते हुए हम आनन्दपूर्व्वक रहें। आओ, तेजसम्पन्न देवताओं के समान हम आनन्द में निमग्न रहें।

२०१। जयसे द्वेष पैदा होता है; क्योंकि, जो जित हैं, वे दुःखी होते हैं। जिसने जयापजय दोनोंको तिलाजंली दे दी है, वह समाधान और सुखी रहता है। *

२०२। रागके समान अग्नि नहीं है। द्वेषकी नाईं कलि नहीं है। इस देहकी यातनाओंके समान यातनाएँ नहीं हैं। शान्तिकी अपेक्षा अधिक सुख नहीं है।

२०३। सब रोगोंमें तृष्णा परम रोग है (जिनके कारण देह को पुनः-पुनः जन्म-मरण प्राप्त होता है, वे रोग) संस्कारका त्याग करना बड़ा कठिन है। इसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेनाही निर्वाण है—वही परम सुख है। §

---

* सुख और समाधान से निद्रा लेता है।

§ स्कंध सदृशं दुःखं नास्ति। यानी रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ये पांच स्कंध हैं। ये पुनर्जन्म का कारण होते हैं। भाव यह है कि इसके सिवा दूसरा जांव नहीं है। इनका नाश ही चिरशांति है।

२०४। आरोग्य बड़ी देन है और समाधान श्रेष्ठ धन है। विश्वास अति उत्तम सम्बन्धी है और निर्वाण सबसे श्रेष्ठ सुख है।

२०५। जिसने विवेक और शान्ति—इन दो रसोंका पान किया है, वही सच्चे धर्म्मामृतका मधुर पान करता है। भय और पातक से वह विमुक्त होता है।

२०६। आर्य्योंका (जो श्रेष्ठ हैं उनका) दर्शन शुभ होता है और उनका समागम निरन्तर सुखदायक है। यदि मनुष्य मूर्खोंका दर्शन न करेगा तो वह सचमुच सुखी होगा।

२०७। जो मूर्खोंके साथ जाता है, उसे सब मार्गोंसे दुःख होता है। ज्ञाता की सुहबतसे प्यारोंके सहवास की नाईं आनन्द होता है।

२०८। इसलिए, जिसप्रकार नक्षत्रोंके पीछे चन्द्रमा जाता है; उसी प्रकार जो चतुर, श्रीमान्, बहुश्रुत, सहनशील और कार्य-दक्ष सत्पुरुष हैं, उनके पीछे-पीछे तुम जाओ।

सोलहवीं सीढ़ी।

प्रिय वर्ग।

२०९। जो अपना जीवित-कर्त्तव्य भुलाकर, सुखके पीछे दौड़ता है और ध्यान करनेका कार्य्य छोड़कर, अभिमान के अधीन होता है, वह ध्यानमें सदैव निमग्न रहनेवाले मनुष्य से कुछ कालके बाद डाह करेगा।

२१०। यह अच्छा है किम्बा बुरा है—इस ओर मनुष्यको अधिक ध्यान न देना चाहिए। अप्रिय वस्तु का दर्शन होना और प्रिय वस्तु का दर्शन न होना दुःख का मूल है।

२११। इसलिए मनुष्य को किसी भी वस्तु पर प्रेम नहीं करना चाहिए। प्रिय वस्तु का नाश दुःख की जड़ है। जो किसीपर भी प्रीति नहीं करते किम्वा किसीका भी तिरस्कार नहीं करते, उन्हें किसी भी प्रकारका बन्धन नहीं है।

२१२। प्रिय वस्तु से दुःख उत्पन्न होता है। प्रिय वस्तु से भय उत्पन्न होता है। जो प्रेमसे विलग हो चुका ; उसके पास शोक और भय कहाँसे फटकने पायँगे ?

२१३। ममतासे शोक उत्पन्न होता है, ममताके कारण डर पैदा होता है। जो ममता से अलग है, उसे शोक और भय क्यों कर मालूम होंगे?

२१४। आसक्तिके कारण शोक होता है, आसक्तिके कारण भय उत्पन्न होता है। जो आसक्ति-रहित हो चुका है; उसे शोक और भीति कहाँ की?

२१५। कामसे शोक उत्पन्न होता है, कामसे भीति उत्पन्न होती है। जिसने कामसे छुटकारा पा लिया है, उसे न शोक है और न भय है।

२१६। तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। जिसने तृष्णासे छुटकारा पा लिया है, उसे शोक और भीति नहीं।

२१७। जो सद्गुणी और बुद्धिमान् है, जो न्यायी, सत्यभाषी और स्वकर्त्तव्यदक्ष है, उसपर लोग प्रीति करते हैं।

२१८। अनिर्वाच्य निर्वाणपदकी प्राप्तिके लिए जिसके मनमें इच्छा उत्पन्न होगई है, जो मनमें सन्तोष धारण करता है और जिसका मन कामसे व्याप्त नहीं हुआ है, उसे 'ऊर्ध्वस्रोत' (वासनारहित होकर उन्नत स्थिति को प्राप्त हुआ) कहते हैं।

२१९। बहुत दूरका प्रवास करके जो मनुष्य कई दिनोंके बाद कुशलपूर्व्वक घर लौट आया है, उसे देखकर उसके सम्बन्धी, सुहृद् और ममताके लोग नमस्कार करते हैं।

२२० । जिस प्रकार सम्बन्धी अपने लौट आये हुए मित्रका आदर-सत्कार करते हैं, उसी प्रकार जिसने पुण्यकृत्य किये हैं, वह मनुष्य यह लोक छोड़कर यदि परलोकको गया, तो वहाँपर उसके सत्कृत्य उसका आदर-सत्कार करते हैं ।

सत्रहवीं सीढ़ी ।

क्रोध वर्ग ।

२२१ । मनुष्यको क्रोध छोड़ देना चाहिए, गर्वका त्याग कर देना चाहिए और सब प्रकारके पाशोंसे अपना छुटकारा कर लेना चाहिए । जो नामरूपमें आसक्ति न रखकर विरक्त है, उसे दुःख प्राप्त नहीं होता ।

२२२ । तेज़ चलनेवाले रथकी नाईं प्रज्ज्वलित क्रोधको जो मनुष्य सम्हालता है, उसे ही मैं सच्चा सारथी कहता हूँ । यदि इतर जन सारथी हुए भी तो वे निरे लगाम के पकड़ने वाले हैं ।

२२३ । मनुष्यको चाहिए कि वह प्रेमके योगसे क्रोधपर जय

प्राप्त करे, अच्छे कर्म्मोंसे बुरे कर्म्मोंका नाश करे; कृपण को दानके योगसे हरावे और असत्य बोलने-वालोंको सत्यभाषण करके जीते।

२२४। सत्य बोलना चाहिए, क्रोध न करना चाहिए, यदि किसी ने कोई अल्प याचना की, तो उसे सन्तुष्ट करना चाहिए। इन तीन सीढ़ियोंसे तुम देवताओंके समीप पहुँच जाओगे।

२२५। जो मुनिजन किसी भी प्रकारकी हिंसा नहीं करते; जो सत्पुरुष इन्द्रियोंका संयमन करते हैं, वे अटल निर्वाण पदको प्राप्त होंगे। वहाँ पहुँचनेपर उन्हें लवलेशमात्र भी दुःख न होगा।

२२६। जो निरन्तर जाग्रत रहकर अहोरात्र अध्ययन करते हैं, और जो निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, उनके समस्त दोष नाशको प्राप्त होते हैं।

२२७। जो मौन धारण कर बैठता है, उसे लोग दोष देते हैं, जो बहुत बोलता है, उसपर भी लोग दोष मढ़ते हैं और जो मितभाषी है, वह भी दोषका भागी बनता है। सारांश यह, कि इस संसारमें कोई भी ऐसा नहीं है, जिसके माथे लोग दोष न मढ़ते हों। यह अतुलनीय कहावत आजकलकी नहीं, अत्यन्त प्राचीन है।

२२८। लोग जिसकी निरन्तर निन्दा किम्वा स्तुति करते हैं, ऐसा मनुष्य इस जगत्में न पूर्व-कालमें कभी

हुआ है, न भविष्यमें कभी होगा और न वर्त्तमान कालमें ही वर्त्तमान है।

२२९-२३०। जिसका आचरण दोषरहित है, जो बुद्धिमान्, ज्ञान-सम्पन्न और सद्गुणी है—और इस तरह जिसकी रोज़ प्रशंसा होती है, उसे, जंबू-नदीके स्वर्णकी नाईं, दोष मढ़नेका साहस कौन करेगा? देव और ब्राह्मण दोनों उसकी स्तुति करते हैं।

२३१। रागके अधीन मत हो। कायाका निग्रह करो। कायिक दोषोंका (पातकोंका) त्याग कर काया के साथ सदाचरण रक्खो।

२३२। रागमें जिह्वाको वेरोक मत होने दो। जिह्वाका निग्रह करो। वाचिक दोषोंका (पातकोंका) त्याग करो, और वाचा से पुण्याचरण करो।

२३३। मनमें रागको मत रक्खो, मनका निग्रह करो। मानसिक पापाचरणोंको छोड़कर मनसे पुण्याचरण करो।

२३४। जिन्होंने कायाका निग्रह किया है, वाचाका निग्रह किया है और मनका निग्रह किया है, वे ज्ञाता लोग सचमुचमें पूर्ण निग्रही हैं।

अट्ठारहवीं सीढ़ी ।

मल वर्ग ।

२३५ । तुम अब पके पत्ते की नाईं होगये हो । यमदूत तुम्हारे पास आन टपके हैं ; तुम मरण-द्वारके सन्निध खड़े हो और तुम्हारे पास प्रवास की बिल्कुल सामग्री नहीं है ।

२३६ । तुम अपनी रक्षाके लिए द्वीप तैयार करो, भरसक मिहनत करो और बुद्धिमान् बनो । अन्तर्यामके मलका नाश होकर तुम ज्योंही पापसे मुक्त हो जाओगे, त्योंही श्रेष्ठ लोगों (आर्य्यों) के स्वर्ग में तुम्हारा प्रवेश होगा ।

२३७ । तुम्हारा आयुष्य पूर्ण हो चुका है और तुम मृत्युके (यमके) बिल्कुल निकट आन पहुँचे हो, मार्गमें तुम्हारे लिए आरामकी जगह नहीं और तुम्हारे पास प्रवासकी सामग्री भी नहीं है ।

२३८ । स्वतःकी रक्षाके लिये द्वीप तैयार करो । भरसक प्रयत्न करो । तुम्हारे अन्दरका मल निकल जानेसे जहाँ तुम दोषरहित होगये, वहाँ तुम जन्म और जराके चक्करमें पुनः न फँसोगे ।

२३९ । जिस प्रकार सुनार चाँदीका मैल निकाल डालता है, उसी

प्रकार ज्ञाताको अपने अन्तःकरणका मैल प्रतिक्षण थोड़ा-थोड़ा निकालते जाना चाहिये।

२४०। लोहेसे उत्पन्न होनेवाला ज़ंग एक वार लोहेपर चढ़ जाने से जिस प्रकार लोहेको खा डालता है, उसी प्रकार जो सन्मार्गका उल्लंघन करता है, उसके पाप-कर्म्म उसे दुर्गतिको पहुँचा देते हैं।

२४१। ध्यानका मल (प्रार्थना का मल) अनभ्यास—वारम्वार पाठ न करना—है। घरका मल उसकी नादुरुस्ती है। शरीर का मल आलस्य है। पहरेवालोंका मल असावधानता है।

२४२। स्त्रियोंका कलंक कुवर्ताव है। दाताका लांछन लोभ है। सब प्रकारका दुराचार इहलोक और परलोक दोनोंमें लांछनास्पद है।

२४३। परन्तु, इन सब मलोंमें अत्यन्त गन्दा मल अविद्या किम्वा अज्ञान है। हे भिक्षुओ! तुम इस मलको धोकर, निर्मल बनो।

२४४। जो निर्लज्ज, दूसरोंकी हत्या करने वाला हत्यारा, अपमान करनेवाला, साहसी और चाण्डाल है, उस काक-वृत्तिके मनुष्यको यह जीवन-यात्रा बड़ी सुगम है।

२४५। जो विनयशील, पवित्र रहनेकी ओर सदैव ध्यान देनेवाला, निस्पृह, शान्त, निष्कलंक और निपुण है, उसे यह जीवन-यात्रा बड़ी कठिन है।

२४६। जो हिंसा करता है, जो असत्य-भाषण करता है, जो दूसरोंके द्वारा दिये विना उनकी वस्तुओंका अपहरण करता है, जो विदेश में जाता है—वह *

२४७। और जो मद्य सेवनमें बिल्कुल चूर होता है, वह इहलोक-मेंही अपने हाथसे अपनी जड़ खोद डालता है। (स्वयं अपने हाथसेही आत्मनाश कर लेता है)।

२४८। रे मनुष्य, ध्यानमें रख कि, जिनकी वासनाएँ रोकी नहीं जातीं, वे शोचनीय स्थितिमें रहते हैं। इस बातका हमेशा ख्याल रख, जिससे तुझे लोभ और दुर्व्यसन चिरकाल दुःखमें न डालेंगे।

२४९। लोग अपनी श्रद्धा और अपने सन्तोषके अनुरूप धर्म्म करते हैं; दूसरोंको दिये गये अन्न-जलसे जो अपने मनमें जलता-भुनता है, उसे रातदिन शान्ति नहीं।

२५०। जिस मनुष्यके मनसे इस प्रकारकी भावनाका लोप हो गया है और उसका जड़ सहित नाश होगया है, उस मनुष्य को रातदिन शान्ति प्राप्त होती है।

२५१। क्रोधके समान अग्नि नहीं, द्वेषके समान मगर (ग्राह) नहीं, मायाके समान पाश नहीं और तृष्णाके समान प्रवाह नहीं है।

२५२। दूसरोंके दोष सहजमें दीख पड़ते हैं, परन्तु स्वयं

---

* श्लोक नंबर २४६ और २४७ का संबंध एकत्र है। २४९ और २५०वें श्लोक भिक्षुओं के लिए उपदेशित हैं।

अपने दोषोंका दृष्टिगोचर होना बड़ा कठिन है। मनुष्य दूसरोंके दोषोंको भूसे की नाईं छान निकालता है; परन्तु जिस तरह झूँठा जुआरी दूसरे जुआरीसे अपना झूँठा दाँव छिपाता है, उसी प्रकार मनुष्य स्वयं निजके दोषोंको संसार से छिपाता रहता है।

२५३। मनुष्य दूसरेके दोषोंको देखकर यदि हमेशा क्रोधित होने लगे, तो उसका क्रोध किम्वा मनोविकार बढ़ेगा और उसके हाथसे उसका निर्दलन न हो सकेगा।

२५४। आकाश में मार्ग नहीं, वाह्यकृति से (वेषसे) मनुष्य श्रमण (साधु) नहीं होता। जनको प्रपंचमें आनन्द होता है; जो तथागत (बुद्ध) हैं, वे प्रपंचसे मुक्त रहते हैं।

२५५। आकाशमें मार्ग नहीं। वाह्यकृतिसे मनुष्य श्रमण नहीं होता। प्राणी शाश्वत नहीं; परन्तु जो बुद्ध हैं, उन्हें संस्कारके वन्धन नहीं हैं।

उन्नीसवीं सीढ़ी।

धर्मशील वर्ग।

२५६-२५७। जो मनुष्य किसी भी वातका ज़वरदस्ती से फ़ैसला करता है, वह धर्म्मशील (न्यायी) नहीं; जो सत्य-असत्य

की छानबोन करता है, जो विद्वान् है, जो दूसरोंके बला-
त्कारसे नहीं, किंतु धर्म्म और न्यायसे जनताका अगुआ-
पन धारण करता है और जो धर्म्म-संरक्षित एवम् मति-
मान् है, उसे धर्म्मशील कहते हैं।

२५८। यदि मनुष्य बहुत बोले, तो वह पण्डित नहीं कहा जा
सकता; जो सहनशील है, जो किसीका तिरस्कार नहीं
करता और जिसका हृदय भीतिसे रीता है उसे पण्डित
कहते हैं।

२५९। बहुतसी बकझक करनेसे मनुष्य धर्म्मशील नहीं कहा जा
सकता। सच्चा धर्म्मशील वही है, जो धर्म्मानुसार आच-
रण करता तथा धर्म्म की उपेक्षा नहीं करता है, फिर
उस का धर्म्म-अध्ययन थोड़ा भी क्यों न हो।

२६०। मनुष्यके बाल सफ़ेद हो जानेसे वह बूढ़ा नहीं होता।
वह यदि वयातीत भी हुआ, तो भी लोग कहते हैं कि वह
बेचारा व्यर्थ बूढ़ा हुआ।

२६१। सत्यधर्म्म, सद्गुण, प्रेम, संयमन, नियमितता आदि गुणों
से अलंकृत जो मनुष्य दोषरहित और ज्ञाता है, उसे ही
वृद्ध कहना चाहिए।

२६२। जो मनुष्य ईर्षालु, लोभी और अप्रामाणिक है, वह चाहे
कितनी भी बकझक क्यों न करे किम्वा उसका वर्ण
कितना भी सुन्दर क्यों न हो, तो भी वह श्रेष्ठ किम्वा
मान्य नहीं होता।

२६३। जिनके ये समस्त दोष नष्ट होगये हैं और उनका जड़ सहित नाश हो गया है और जहाँ वह द्वेषरहित तथा ज्ञानसम्पन्न होगया वहाँ उसे लोग श्रेष्ठ किम्वा सर्व-मान्य कहते हैं।

२६४। जो मनुष्य नियमोंका पालन नहीं करता और जो असत्य-भाषण करनेवाला है, वह चाहे मुण्डन भी क्यों न करावे, तो भी 'श्रमण' नहीं होता। तृष्णा और लोभके पाशोंमें जब तक मनुष्य बद्ध है, तबतक क्या उसे श्रमण कह सकते हैं?

२६५। जो मनुष्य पापोंका, फिर वे चाहे छोटे हों किम्वा बड़े, शमन करता है, उसे श्रमण (शान्तचित्त) कहते हैं। क्योंकि, वह समस्त पापोंका शमन कर चुकता है।

२६६। दूसरोंके यहाँ जाकर भिक्षा माँगनेसे मनुष्य भिक्षु नहीं होता। जो सिर्फ भिक्षा माँगता है, वह भिक्षु नहीं—परन्तु भिक्षु वही है, जो सम्पूर्ण धर्म्मका अवलम्वन करता है।

२६७। जो मनुष्य पुण्य और पापसे अलिप्त रह कर ब्रह्मचर्यका पालन करता है, जो पवित्र है और जो इहलोकमें ज्ञानसे काल-क्रमण करने वाला है, वही सच्चा भिक्षु कहलाता है।

२६८-२६९। जो मूर्ख और अज्ञानी है, वह चाहे मौन भी धारण करे तोभी मुनि नहीं होता। परन्तु जो ज्ञाता तुला लेकर अच्छी बातें ग्रहण करता और बुरी बातोंका त्याग करता है, वह मुनि है; इससे उसे मुनित्व प्राप्त होता है।

जो दोनों पक्षोंका विचार करता है, उसे उभय-लोकोंमें मुनि नाम प्राप्त होता है।

२७० । जो मनुष्य जीवित प्राणियोंको दुःख देता है, वह आर्य (श्रेष्ठ) नहीं। क्योंकि, जो समस्त प्राणियोंपर दया करता है, उसेही आर्य की संज्ञा प्राप्त होती है।

२७१-२७२ । हे भिक्षो ! जब तक तूने वासनाका निर्दलन नहीं किया है, तब तक व्यर्थ यह डींग मत मार कि नियम से, व्रतसे, बहुत अध्ययन से, समाधि लगानेसे किम्वा अकेले सोनेसे जो नैष्कर्म्य शान्ति-सुख प्राप्त नहीं होता, और ऐहिक विषयों में फँसे हुए मनुष्योंको जिसका कदापि अनुभव प्राप्त नहीं होता—वह सुख मुझे प्राप्त होता है।

बीसवीं सीढ़ी।

मार्ग वर्ग।

२७३ । सब मार्गोंमें अष्टांग मार्ग श्रेष्ठ है। सत्योंमें चार श्रेष्ठ हैं;* जिसे देखनेके लिए आँखें हैं, वह मनुष्य सबमें श्रेष्ठ है।

---

* अष्टांग मार्ग और आर्य-सत्य-चतुष्ट्य के लिए पाठक कृपा कर १९१ नंबर का श्लोक देखें।

२७४। मनको शुद्ध करनेके लिए यही मार्ग है. इसके सिवा दूसरा मार्ग नहीं। इसी मार्गसे जाओ। ऊपर कहे हुए मार्गके सिवा अन्य मार्ग मारके (कामदेवके)·पाश हैं।

२७५। इस मार्गसे जानेपर तुम अपने दुःखोंका अन्त कर सकोगे। शोक-शल्य किस प्रकार दूर किया जा सकेगा, इसकी जानकारी प्राप्त हो जानेके पश्चात् मैंने इस मार्ग का बोध किया है।

२७६। तुम्हें स्वयम् प्रयत्न करना चाहिए। तथागत (बुद्ध) सिर्फ़ उपदेशक हैं। जो सुविचारी लोग इस मार्गका अवलम्बन करते हैं, वे मारके (कामदेवके) पाशोंसे छुटकारा पा जाते हैं।

२७७। "सर्व निर्मित वस्तुएं नाशको प्राप्त होती हैं"— जो मनुष्य ऊपर लिखे हुए इस तत्त्वको जानता है और मनमें इसका आचार करता है, वह दुःख भोगनेके लिए सहन-शील बनता है। शुद्धता प्राप्त होनेका यही मार्ग है।

२७८। "सर्व निर्मित वस्तुएं दुःखमय और शोकमय हैं—" जो मनुष्य ऊपर लिखे हुए तत्त्व को जानता है और मनमें उसको आचरता है, वह दुःख भोगनेमें सहनशील बनता है। चित्तशुद्धिका यही मार्ग है।

२७९। "सर्व आकृतिमय वस्तुएं असत्य हैं"—जो यह जानता है और इसको अपने मनमें आचरता है, वह दुःख भोगनेमें

सहनशील होता है। चित्तशुद्धि होनेका यही मार्ग है।

२८०। जागनेका समय हो जानेपर भी जो अपनी निद्रा नहीं छोड़ता, युवा और सुदृढ़ होते हुए भी जो आलस्य से पूर्णतया ग्रसित होगया है, जिसके निश्चय और विचार दुर्बल हैं, उस आलसी मनुष्य को ज्ञान-मार्ग कदापि प्राप्त नहीं हो सकेगा।

२८१। वाचापर अधिकार रखकर और अपने मनका आकलन करके मनुष्य कायासे कभी भी दुष्कर्म न करे। जो मनुष्य इन त्रिविध कर्म-मार्गोंसे पवित्र आचरण रखता है, उसे मुनियोंके द्वारा उपदेश किया गया मार्ग सहजही में प्राप्त होता है।

२८२। आस्था होनेसे ज्ञान की बाढ़ होती है, आस्थाके अभावमें ज्ञान क्षयको प्राप्त होता है। जब मनुष्य को ज्ञानकी वृद्धि और क्षयके इन दो मार्गोंकी जानकारी होजाय, तब उसे वही मार्ग स्वीकार करना चाहिए, जिससे ज्ञान की वृद्धि हो।

२८३। (तृष्णा का) एक ही वृक्ष न काटकर समस्त जंगलही काट डालो! यह तृष्णारूपी जंगलही धोखेका मूल है। इस जंगलके (तृष्णाके) छोटे-बड़े वृक्ष-पौधोंको काट डालने पर, हे भिक्षुओ, तुम इस जंगलसे बाहर आ जाओगे—तुम्हारी रिहाई होगी।

२८४। जब तक स्त्रियोंके प्रति आसक्ति थोड़ी भी कम नहीं हुई है,

तब तक जिस तरह दूध पीनेवाला बछड़ा अपनी मातापर अवलम्बित रहता है, उसी तरह उनका मन स्त्रियोंके प्रति बद्ध रहता है।

२८५। शरत्कालके कमलकी नाईं तुम आत्मप्रीतिको अपने हाथ से काट डालो ; शान्ति के मार्गका अवलम्बन करो। सुगतने (बुद्धने) निर्वाण-मार्ग बतला दिया है।

२८६। मूर्ख मनुष्य विचार करता है कि बरसात में मैं यहाँ रहूँगा ; गर्म्मी और ठंढमें भी यहीं रहूँगा। परन्तु वह अपनी मृत्यु का तनिक भी विचार नहीं करता।

२८७। रात्रिमें निद्रित ग्रामको जिस प्रकार महापूर बहा ले जाता है, उसी प्रकार लड़कों-बच्चों तथा गाय-बैल आदि पशुओंके बारेमें जिसकी ख्याति है और इन सबोंमें जिसका मन बिल्कुल गड़ गया है, उस असावधान मनुष्यको मृत्यु अचानक ले जाती है।

२८८। जहाँ मनुष्यको मृत्युने एक बार गाँठ लिया तहाँ उसे फिर पिता, पुत्र एवम् इतर स्वकीय जनोंका रत्तीभर भी उपयोग नहीं होता।

२८९। जिस बुद्धिमान् और सज्जन मनुष्य को इस तत्त्वकी जानकारी होगई है, वह शीघ्र सांसारिक बन्धनोंको काट डालता है।

इक्कीसवीं सीढ़ी ।

प्रकीर्ण (विविध) वर्ग ।

२९० । यदि अल्प सुखका त्याग करनेसे अधिक सुख प्राप्त होता है, तो ज्ञाता को अल्प सुखका त्याग कर अधिक सुखकी इच्छा रखनी चाहिए ।

२९१ । दूसरोंको दुःख देकर उससे जो कोई स्वयं अपने लिए सुख-प्राप्ति की वाञ्छा रखता है, वह द्वेष-शृंखलाओं में बद्ध होनेके कारण द्वेष से कभी भी छुटकारा नहीं पाता ।

२९२ । जो विहित कर्म्मोंकी उपेक्षा करते हैं और ऐसे कर्म्म करते हैं जो न करने चाहिएँ, उन अनियंत्रित और अविचारी मनुष्योंकी वासनाएँ निरन्तर बढ़ती रहती हैं ।

२९३ । परन्तु जो अपनी देहमें निरन्तर जागृत रहते हैं, अयोग्य कर्मोंको नहीं करते और जो कर्तव्यको ध्यानपूर्व्वक करते हैं, उन बुद्धिमान् और दक्ष मनुष्योंकी वासनाओंका अन्त होता है ।

२९४ । सच्चा ब्राह्मण चाहे अपने माता-पिताको मार डाले, दो बलवान् राजाओंकी हत्या कर डाले और राज्यकी समस्त प्रजाका भी संहार कर डाले, तो भी उसे उसके लिए कोई दण्ड नहीं है ।

२९५। सच्चा ब्राह्मण चाहे अपने माता-पिताको, दो श्रोत्रिय (वेदोंमें निष्णात) राजाओंको और इनके सिवा किसी कीर्तिमान् मनुष्य को भी मार डाले, तोभी उसे उसके लिए कोई दण्ड नहीं है। *

२९६। गौतमके (बुद्धके) शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं और उनका चित्त अहोरात्र निरन्तर बुद्ध में रमा रहता है।

२९७। गौतमके (बुद्धके) शिष्य निरन्तर बिलकुल जागृत रहते हैं, और उनका चित्त अहोरात्र सदा धर्ममें रमा रहता है।

२९८। गौतमके (बुद्धके) शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं, और उनका चित्त सर्वदा संघमें रमा रहता है।

२९९। गौतमके शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं और उनका मन रात-दिन अपने शरीरकी विवंचना में (कायासे सदाचारार हो, दुराचार न होवे) रमा रहता है।

३००। गौतम के शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं, और अहोरात्र सदा दयार्द्र रहने में उनके चित्त को उत्साह (उल्लास) मालूम होता है।

३०१। गौतम के शिष्य निरन्तर बिल्कुल जागृत रहते हैं, और अहोरात्र सदा ध्यानमें निमग्न रहने में उन्हें आनन्द मालूम होता है।

---

* नोट—२९५—(तात्त्विक अर्थ) जिसने व्याघ्रपंचम यानी धर्म-जीवन के पाँच शत्रुओं (१) काम (२) अहङ्कार (३) हिंसा (४) आलस्य और (५) संदेहका नाश कर डाला है, उसे उसके लिये पातक नहीं।

३०२। साधु होनेके लिए संसारका त्याग करना बड़ा कठिन है। संसारमें रहकर उपभोग लेना बड़ा कठिन है। मठ में रहना औघट है और संसारमें रहना भी उसी प्रकार दुर्घट है। हमजोलियोंमें मिलजुलकर रहना दुःखदायी है और अकेला भटकनेवाला भिखारी भी दुःख से व्याप्त होगया है। अतएव कोई भी भिखारी बनकर भटकता न फिरे, जिससे उसे दुःख नहीं होगा।

३०३। जो मनुष्य श्रद्धा-युक्त, सदाचारी, यशस्वी और समृद्ध है, वह कहीं भी क्यों न जाय, सब ठौर उसका आदर होता है।

३०४। हिमाच्छादित पर्वतकी नाईं अच्छे मनुष्योंका तेज बहुत दूरतक पहुँचता है। पर जो लोग बुरे होते हैं, वे रातमें छोड़े गये बाणकी नाईं किसीके भी दृष्टि-पथ में नहीं आते।

३०५। जो सदैव इस तरह अकेला बैठता और अकेला सोता है, मानो वह अरण्य में ही वास करता हो और जिसने स्वयम् अपने पर (नीच प्रवृत्तियोंपर) जीत हासिल करली है, उसेही वासनाके दमन करनेका श्रेय प्राप्त होता है।

बाईसवीं सीढ़ी।

निरय (नरक) वर्ग।

३०६। जो कुछ भी न रहते हुए कहता है कि है, वह नरक के पास पहुँचता है। उसी प्रकार, किसी कर्मके कर चुकनेपर भी जो यह कहता है कि इसे मैंने नहीं किया है, वह भी नरकमें जाता है। वे दोनों पाप-कर्त्ता होनेके कारण मृत्युके अनन्तर समान स्थिति में रहते हैं।

३०७। जिन्होंने पीत वस्त्र (भिक्षुवेष) परिधान किये हैं, ऐसे कई लोग दुराचारी और असंयत वृत्तिके होते हैं। ये पापी लोग अपने दुष्कर्मों के योगसे नरकमें जाते हैं।

३०८। दुराचारी मनुष्य भिक्षापर उदर-भरण करनेकी अपेक्षा यदि धकधक जलनेवाली अग्नि की नाईं लाल भभूका लोहेका गोला भक्षण करे, तो अच्छा है।

३०९। जो अविचारी मनुष्य पर-स्त्रीकी अभिलाषा करता है, उसे चार प्रकारके फल मिलते हैं:—(१) अपयश (२) निद्रा को नाश करनेवाली चिन्ता (३) दण्ड और अन्तमें (४) नरक।

३१० । अपने मनमें परायी-स्त्रीके बारेमें पाप-वासना मत रखो। क्योंकि इससे मनुष्य अपयश का भाजन बनता है, वह कुमार्ग (नरक) में जाता है, जो भीति से ग्रस्त हैं, उन्हें भीति-ग्रस्तोंके समागमसे अल्प सुख-प्राप्ति होती है और इसके सिवा राजा भी उन्हें कड़ी सज़ा देता है।

३११ । कुश घास (काँस) की पत्तियोंको ठीक तौरपर न पकड़नेसे जिस तरह हाथ कट जाता है, उसी प्रकार यदि भिक्षुत्वका पालन ठीक तौरपर न किया जाय, तो वह मनुष्य को नरक में पहुँचाता है।

३१२ । अविचार-पूर्व्वक किये हुए कृत्यसे, भंग किये गये व्रतसे और नियमपूर्व्वक आचरण करनेमें टालमटोल करनेसे तनिक भी फल-प्राप्ति नहीं होती।

३१३ । जिस कृत्यका करना विहित है, वह अवश्य किया जावे। उत्साह-पूर्व्वक उसके पीछे पड़ना चाहिए। वेफ़िक्रीसे आचरण करनेवाला प्रवासी (यति) वासनारूपी धूल-मात्र बहुत उड़ाता है।

३१४ । दुष्कर्म्मको न करनाही अच्छा है ; क्योंकि, उससे मनुष्यको आगे चलकर पश्चात्ताप होता है। सत्कर्म्मको करना अच्छा है ; क्योंकि, उसके करनेसे मनुष्यको पश्चात्ताप नहीं होता।

३१५ । सीमाके दुर्ग पर जिस तरह भीतर और बाहरसे संरक्षणका उत्कृष्ट प्रबन्ध किया हुआ रहता है, उसी प्रकार मनुष्यको

अपनी संरक्षा करनी चाहिए। एक पल भी व्यर्थ न जाने देना चाहिए। जो योग्य अवसर को हाथसे निकल जाने देते हैं, वे नरक में पड़कर क्लेश पाते हैं।

३१६। जिसके लिए लजानेका कोई कारण नहीं, उसके लिए जो लज्जित होते हैं; उसी प्रकार जिसके लिए लज्जित होना चाहिए, उसके लिए जो बिलकुल नहीं लजाते; ऐसे लोग वाहियात मतोंको स्वीकार कर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं।

३१७। जिसके लिए डरनेकी ज़रूरत नहीं, उससे जो व्यर्थ भय खाते हैं; उसी प्रकार, जिससे भय खाना योग्य है, उससे जो बिल्कुल नहीं डरते; वे असत्य मतोंको ग्रहणकर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं।

३१८। जिसके लिए निषेध किम्वा मनाई करनेकी आवश्यकता नहीं, उसका जो निषेध करते हैं, और जो निषिद्ध किम्वा अयोग्य बातोंका निषेध नहीं करते, वे असत्य मतोंका अवलम्बन करके दुर्गतिको पहुँचते हैं।

३१९। जो यह भली भाँति जानते हैं कि अमुक वस्तुका निषेध किया है, और अमुक वस्तुका निषेध नहीं किया है, वे सत्य-मार्गको स्वीकार कर सद्गतिको प्राप्त होते हैं।

तेईसवीं सीढ़ी।
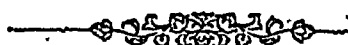
नाग (हाथी) वर्ग।

३२०। जिस प्रकार लड़ाईमें हाथी धनुष के वाणोंको सहन करता है, उसी प्रकार मैं निन्दाको शान्तिपूर्व्वक सहन करूँगा। क्योंकि, यह संसार दुष्ट स्वभाव का है।

३२१। पालतू हाथीको लड़ाईपर ले जाते हैं। पालतू हाथीपर राजा आरूढ़ होता है। जो शान्ति-पूर्व्वक निन्दा सहन करता है, वह सहनशील मनुष्य सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ है।

३२२। पालतू सिन्ध-जातिके घोड़े उत्तम होते हैं, बड़े खीसों वाले पालतू हाथी उत्तम होते हैं, पालतू खच्चर उत्तम होते हैं; परन्तु जो अपना स्वयम् पालतू है (यानी जिसने अपनी वासनाका दमन किया है), वह इन सबकी अपेक्षा अधिक उत्तम है।

३२३। क्योंकि, इन प्राणियोंकी सहायतासे मनुष्य अत्यन्त दुर्गम स्थल—निर्वाण—को नहीं जा सकता। परन्तु उस दुर्गम स्थानपर दान्त मनुष्य (यानी जिसने अपनी सकल

वासनाओंका दमन किया है वह) अपने आत्मसंयमन के वल से जा सकता है।

३२४। जो मदोन्मत्त है, जिसके गण्डस्थल से मद चू रहा है और जिसे पकड़ना कठिन है, ऐसे धनपाल नामक हाथीको पकड़कर बाँध देनेसे वह घास भी नहीं खाता ; वह अपने निविड़ वनके लिए चिन्तित रहता है।

३२५। जो मनुष्य मोटा और लोभी वन गया है, जो कुम्भकर्णी निद्राका सेवी और आलसी होगया है, वह मूर्ख ठूँठनपर चढ़े हुए सुअर की नाईं पुनः-पुनः जन्म पाता है।

३२६। पहले मेरा यह मन चाहे जहाँ अपनी इच्छानुसार स्वछन्द भ्रमण करता रहता था ; परन्तु जिस तरह अंकुशधारी महावत मदोन्मत्त हाथीको रोक रखता है, उसी प्रकार अब मैं अपने मनका पूर्ण रीतिसे आकलन करूँगा।

३२७। असावधान मत रहो। अपने विचारोंपर ध्यान रखो। जिस प्रकार कीचमें फँसा हुआ हाथी अपना छुटकारा आप कर लेता है, उसी प्रकार तुम स्वयम् अपनेको कुमार्ग से वाहर निकाल लो।

३२८। यदि किसी मनुष्य को वुद्धिमान्, विचारी और सदाचारी साथी मिल जाय, तो उसे चाहिए कि वह समस्त संकटोंको सहन करता हुआ, उसके साथ वड़े आनन्द से, परन्तु विचारपूर्व्वक, रहे।

३२९। जिस प्रकार जीते हुए प्रान्त को पीछे छोड़कर राजा

आगे अकेला जाता है, किम्वा जिस तरह अरण्यमें मत्त गज अकेलाही भ्रमण करता है, उसी प्रकार यदि किसी मनुष्यको बुद्धिमान् एवम् सत्यशील साथी न मिले तो उसे अकेलाही रहना चाहिए।

३३० । अकेला रहना अच्छा है, परंतु मूर्खसे मित्रता रखना अच्छा नहीं। जिस तरह जंगलमें हाथी अकेला घूमता है, उस तरह मनुष्य को अकेला घूमना चाहिए। मनुष्यको चाहिए कि वह दुराचार न करे और वह थोड़ीही इच्छाएँ रखे।

३३१ । प्रसंग आनेपर मित्र सुखदायक है, किसी भी कारण से क्यों न हो, संभोग सुखदायक है, मृत्युके समय सत्कर्म्म सुखदायक है और समस्त दुःखोंका त्याग सुखदायक है।

३३२ । संसारमें मातृ-सेवा सुखदायी है, पितृ-सेवा सुखदायी है, श्रमण किम्वा ब्राह्मण की (विद्वान्की) सेवा सुखदायी है।

३३३ । वृद्धावस्था-पर्यन्त स्थिर रहनेवाला सच्छील उत्तम, एकनिष्ठ श्रद्धा उत्तम, ज्ञान-प्राप्ति उत्तम और पाप-कर्म्मोंको टालना उत्तम है।

चौबीसवीं सीढ़ी।

तृष्णा वर्ग।

३३४। अविचारी मनुष्यकी तृष्णा लताकेसमान वढ़ती जाती है। अरण्य में फलकी खोजके लिए जिस तरह लंगूर यहाँ-वहाँ कूदा-फाँदी करता है, उसी तरह अविचारी मनुष्य अनेक जन्म ग्रहण करता है।

३३५। तेज़ और विषैली तृष्णा जिस पर सब ओरसे जीत हासिल कर लेती है, उसकी भुगतान इस जगत्में मोथा नामक घासकी नाईं जल्दी-जल्दी बढ़ती है।

३३६। इस संसारमें भयंकर एवम् कठिन तृष्णापर जय प्राप्त करना बड़ी टेढ़ी खीर है। परन्तु जो ऐसी तृष्णापर जीत हासिल कर लेता है, उसके दुःख कमल-पत्रोंपर जल-विन्दुओंके समान गलकर गिर जाते हैं।

३३७। तुम लोग जो यहाँ इकट्ठे हुए हो, उनसे मैं यह हित की बात बतलाता हूँ कि, "खस की प्राप्तिके लिए जिस तरह मनुष्य मोथा को जड़ समेत उखाड़ डालता है, उसी तरह तुम वासनाओंकी जड़ खोद डालो। ऐसा करनेपर नदी

का प्रवाह जिस तरह मोथा आदि घास को मटियामेट कर देता है; उसी प्रकार मार (काम) तुम्हें वारम्वार न चपेटेगा।"

३३८। जब तक वृक्षकी जड़ क़ायम रहती है, तब तक यदि वह काट भी डाला जाय, तोभी वह सिर्फ़ सुरक्षितही नहीं रहता, किन्तु पुनः हरा-भरा हो जाता है; उसी प्रकार तुमने तृष्णाकी जड़ोंका जब तक नाश नहीं किया है, तब तक ऐहिक दुःख (यातनाएँ) पुनः-पुनः उत्पन्न होंगे।

३३९। जिसकी तृष्णा बलवान् है और वह छत्तीस दिशाओं से सुखोपभोगोंकी ओर दौड़ती है, और जिसकी वासना विषय-लुब्ध हो गई है, उस विषयान्ध मनुष्य को वे तृष्णाएँ तृणकी नाईं वहा ले जाती हैं।

३४०। इस प्रवाह की शाखाएँ चहुँ ओर बढ़ती हैं, जिससे तृष्णा रूपी लताके अंकुर फूटते हैं। यदि तुम्हें मालूम हो जाय कि वह लता बढ़ रही है, तो ज्ञानके योगसे उसकी जड़ उखाड़ डालो।

३४१। प्राणीका विषय-सुख अशोक होता हुआ विलासमय है। विषयोंमें निमग्न रहकर, जिन्हें सुखकी लालसा है, वे लोग जन्म-मरण के चक्रमें फँसे रहते हैं।

३४२। जालमें फँसे हुए खरगोशके समान तृष्णामें फँसे लोग यत्र-तत्र दौड़ते हैं; तृष्णाके पाशोंमें बद्ध होनेके कारण वे वारम्वार अत्यन्त दुःख पाते हैं।

३४३। तृष्णामें फँसे हुए लोग जालमें फँसे हुए खरगोशकी नाईं इधर-उधर भागते हैं; भिक्षुको चाहिए कि वह विरक्ति सम्पादन करनेके लिए भरसक मिहनत करे और उससे तृष्णाका नाश कर डाले।

३४४। *जो तृष्णासे मुक्त होकर भी पुनः तृष्णाधीन होता है और तृष्णा से निकाल डालनेपर भी जो पुनः तृष्णामें जा गिरता है, उस मनुष्यकी ओर देखो! वह मुक्त हो जाने पर भी पुनः बन्दीवास में जा गिरता है।

३४५। जो बेड़ी लोहेकी, लकड़ीकी, किम्बा सनकी बनी रहती है, उसे ज्ञानवान् मनुष्य दृढ़ बन्धन नहीं कहते; परन्तु लड़कों-बच्चोंमें और रत्नालंकारोंमें जो दृढ़ आसक्ति होती है, वही ज़बरदस्त बेड़ी है।

३४६। जो दुर्गतिको ले जाती है, शीघ्रही कसकर जम जाती है और जो खोलनेके लिए कठिन होती है, उस शृङ्खलाको ज्ञानवान् लोग दृढ़ शृङ्खला कहते हैं। जहाँ इस वासना-रूपी शृङ्खलाको सदाके लिए तोड़ डाला, वहाँ तृष्णा और

---

* 'वन' शब्दके दो अर्थ है—(१) इच्छा (२) अरण्य। इसलिये इस श्लोक का दूसरा भी अर्थ होता है। वह इस प्रकार होगा—जिसने अरण्य से छुटकारा पा लिया है परंतु पुनः अरण्यवासी बनता है और अरण्य से निकाल डालने पर भी जो पुनः अरण्यमें जा गिरता है, उस मनुष्यकी ओर देखो! मुक्त होते हुए भी वह पुनः बंदीवासमें जा गिरता है।

सुखोपभोगका त्याग कर मनुष्य समस्त विवंचनाओंसे मुक्त हो जाते हैं।

३४७। जिस तरह पारधी अपनेही द्वारा तैयार किये हुए जालसे नीचे गिर पड़ता है, उसी प्रकार जो लोग वासनाओंके दास बनगये हैं, वे (वासनाओंके) प्रवाहके साथ अधोगति को प्राप्त होते हैं। इन बन्धनोंको सदाके लिए तोड़ डालनेपर ज्ञानवान् लोग समस्त मोहोंका परित्याग कर और विरक्ति धारणकर संसारको छोड़ देते हैं।

३४८। संसारके उस पार जाते समय जो आगे है, उसका त्याग करो; जो पीछे है, उसका त्याग करो ; जो बीचमें है, उसको छोड़ दो। इस तरह जहाँ तुम्हारा मन पूरे तौरसे मुक्त होगया, वहाँ तुम पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्कर में न फँसोगे।

३४९। जो मनुष्य संशय से पूर्णतया ग्रस्त है, जिसकी वासनाएँ प्रवल हैं और जो सिर्फ़ सुखही की अपेक्षा करता है, उस मनुष्य की तृष्णा अधिकाधिक वढ़ती है और वह अपनी वेड़ीको अधिकाधिक कसता और मज़वूत बनाता है।

३५०। शंकाका समाधान कर लेनेमें जिसे सन्तोष मालूम होता है और विचार करके जो यह जानता है कि यह सब (शरीरका मल, वासना आदि) दुःखमय है, वही वास्तवमें काम-पाश (मारके वन्धन) को दूर करता है। केवल यही नहीं, वल्कि उसे काट डालता है।

३५१। जो पूर्णावस्था (निर्वाणके निकट) तक पहुँचकर निर्भय होगया है, जो निरिच्छ (इच्छा-रहित) और निर्दोष होगया है, जिसने संसारके समस्त काँटोंका नाश कर डाला है, उसकी यह देह (जन्म) अन्तिम है।

३५२। जिसकी वासना नष्ट होगई है और जो संगरहित होगया है, जिसे शब्द और उसके अर्थकी पूरी-पूरी जानकारी है, उसका यह जन्म अन्तिम है : उसे लोग सिद्ध पुरुष—महापुरुष—कहते हैं।

३५३। "मैंने सब जीत लिया है, मैं सर्वज्ञ हूँ, आयुष्य की सारी दशाओंमें मैं निष्कलंक हूँ, मैंने सबका त्याग कर दिया है और वासना का नाश कर देनेके कारण मैं मुक्त होगया हूँ, स्वयम् मैंही पढ़ा हूँ, अतएव किसे पढ़ाऊँ ?"

३५४। सब दानोंकी अपेक्षा धर्म्म-दान अधिक कल्याणकारक है, सब रसोंसे धर्म्म-रसकी मधुरता अधिक है, सब आनन्दोंमें धर्म्मसे प्राप्त होनेवाला आनन्द अधिक श्रेष्ठ है—सब दुःखोंका संहार करनेके लिए वासनाको समूल नष्ट कर डालना अत्यन्त आवश्यक है।

३५५। जो मूर्ख संसारके उस पार जानेकी इच्छा नहीं रखते, सुखोपभोग उनका नाश कर डालता है। सुखोपभोगकी लालसा रखकर मूर्ख मनुष्य वैरीकी नाईं स्वयम् अपना ही नाश कर डालता है।

३५६। घाससे खेतका नाश होता है ; तृष्णासे मनुष्यका नाश

होता है ; अतएव जो मनुष्य द्वेप-रहित हैं, उन्हें दान देनेसे अधिक फलप्राप्ति होती है।

३५७। घाससे खेतका नाश होता है ; द्वेपसे मनुष्यका नाश होता है ; इसलिए जो कोई द्वेपरहित है, उसे दान देनेसे बहुत फल-प्राप्ति होती है।

३५८। घास से खेतका नाश होता है ; गर्व से मनुष्यका नाश होता है ; इसलिए जिन्हें गर्व नहीं, उन्हें दिये हुए दान से अधिक फल-प्राप्ति होती है।

३५९। घाससे खेतका नाश होता है, तृष्णासे मनुष्यका नाश होता है ; इसलिए जिनकी तृष्णा नष्ट होगई है, उन्हें दान देनेसे अधिक फल-प्राप्ति होती है।

पच्चीसवीं सीढ़ी।

भिक्षु (उपदेशक) वर्ग।

३६०। आँखोंको वश करना अच्छा, कानोंको वश करना अच्छा, नाकको वश करना अच्छा और जिह्वाको वश करना अच्छा है।

३६१। देहको वश करना अच्छा, वाचाको वश करना अच्छा, मनको वश करना अच्छा और सब प्रकारसे आत्म-संयमन करना अच्छा है। जिस भिक्षु ने सब प्रकारका संयमन कर लिया है, वह सब दुःखोंसे विमुक्त है।

३६२। जो हाथ, पाँव और वाचाको वशमें रखता है, जिसने स्वयम् अपनेको पूर्णवशमें कर लिया है, जो आत्म-संतुष्ट है और जो स्थिरचित्त होकर एकान्तमें समाधान-वृत्तिसे रहता है, उसेही लोग भिक्षु कहते हैं।

३६३। जो भिक्षु मुँहको रोककर शान्ति और बुद्धिमत्ता के साथ भाषण करता है और जो धर्म्मका इस तरह उपदेश करता है, जिससे उसका उपदेश लोगोंके अन्तःकरणमें जम जाय, उसका भाषण मधुर है।

३६४। जो भिक्षु धर्म्म का विवेचन करता है, धर्ममें जिसे आनन्द प्राप्त होता है, जो धर्मके बारेमें चिन्तन करता है और धर्माज्ञानुसार जो अपना आचार रखता है, वह सत्यधर्मसे कदापि नीचे नहीं गिरता।

३६५। हमें जो कुछ मिला हो, उसे तुच्छ न समझना चाहिए और यदि दूसरेको हमसे अधिक मिला हो, तो हमें उससे कभी डाह नहीं करना चाहिए। जो भिक्षु दूसरेसे जलता है, उसे कभी भी मनकी शान्ति नहीं मिलती।

३६६। थोड़ासा भी मिलनेपर जो भिक्षु उस देनको तुच्छ नहीं

समझता, उस शुद्ध आचारवाले तथा उद्योग-तत्पर भिक्षु की देवता लोग भी प्रशंसा करते हैं।

३६७। नाम और रूपसे जो अपनी स्वतःकी एकता नहीं कर लेता और जो गत कालके लिए शोक नहीं करता, उसेही सच्चा भिक्षु कहना चाहिये।

३६८। जो दयालु है और जो बुद्ध के उपदेशमें स्थिरचित्त हो गया है, उस भिक्षुकी वासनाएँ विराम पाती हैं, उसे सुख होता है और उसे शान्तिका स्थान—निर्वाण—प्राप्त होता है।

३६९। हे भिक्षु, तू इस नौकाको ख़ाली करदे! रीती कर देनेपर वह अधिक वेगसे चलेगी। राग और द्वेषका पूर्ण रीति से नाश करनेपर तू निर्वाणके निकट पहुँचेगा।

३७०। पञ्चेन्द्रियोंका निर्दलन कर पाँचों पाशोंको तोड़ डाल, उन पाँचोंपर जय प्राप्त कर। इन पाँचों बन्धनोंसे जिस भिक्षुने छुटकारा पालिया है, उसे ओघोत्तीर्ण (पूरसे बचा हुआ) कहते हैं।

३७१। हे भिक्षु, ध्यान कर। स्वेच्छाचारी (प्रमत्त) न बन। जिन वस्तुओंसे सुख-प्राप्ति होती है, उनकी ओर ध्यान न लगा। जिससे तुझे तेरी आज़ादीके लिए नरकमें लोहेका गोला न खाना पड़ेगा और उसे खाते समय जल जानेपर तुझे 'हाय बाप कैसा दुःख है!' यह चिल्लानेकी वेला न आवेगी।

३७२। ज्ञानके बिना ध्यान नहीं और ध्यानके बिना ज्ञान नहीं है। जिनमें ध्यान और ज्ञान दोनों हैं, वे निर्वाण तक पहुँच गये हैं।

३७३। जिस भिक्षुने शून्यमय गृहमें प्रवेश किया है, जिसका चित्त स्थिर हो गया है और जिसे धर्म्मकी स्पष्ट जानकारी होने लगी है, उसे अमानुष (अतर्क्य) आनन्द होता है।

३७४। शाश्वत निर्वाण-पदके पहचाननेवालेको जो आनन्द और जो सुख प्राप्त होता है—वह आनन्द और वह सुख उस मनुष्यको उसी समय प्राप्त हो जाता है, जिसे शरीर की उत्पत्ति और शरीर के खण्डोंके (घटकावयवोंके) नाशके बारेमें ज्ञान हो चुका है।

३७५। इन्द्रियोंपर दृष्टि रखकर समाधान रखना और धर्म्मानुसार आचरण करना, तथा ऐसे सज्जनोंसे मित्रता रखना, जिनका आचरण पवित्र है और जो आलसी नहीं हैं—यह बुद्धिमान् भिक्षुका इहलोक में आद्य कर्त्तव्य है।

३७६। परोपकारमें रत और अपने कर्त्तव्य-कर्म्मोंमें तत्पर रहनेसे उसे जो पूर्ण आनन्द होता है, उससे वह क्लेशोंका नाश कर सकता है।

३७७। हे भिक्षुओ! जिस प्रकार वासिका (वसन्ती) नामक लता मुरझाये पुष्पोंका त्याग कर देती है, उसी प्रकार मनुष्यको तृष्णा और वैरका त्याग करना चाहिए।

३७८। जिस भिक्षुकी काया, वाचा और मन ये इन्द्रियाँ प्रशान्त

होगई हैं, जो स्थिर-चित्त है और संसारके आमिषों का जिसने त्याग किया है, उसे ही 'उपशान्त' कहते हैं।

३७९। रे भिक्षो! तू स्वयम् जागृत होकर प्रयत्न करनेमें तत्पर हो, स्वयम् अपना परीक्षण कर ; तेरे इस प्रकार स्वसंरक्षित और दृक्ष होनेपर तू आनन्द-पूर्व्वक अपना काल व्यतीत करेगा।

३८०। क्योंकि मनुष्य स्वयम् ही अपना स्वामी है, अपना आपही तारण-कर्त्ता है, इसलिये जिस प्रकार व्यापारी उमदा घोड़े को अधीन रखता है, उस प्रकार तू स्वयम् अपनेको अपने अधिकार में रख।

३८१। जो भिक्षु आनन्द-पूर्ण होकर वुद्ध के उपदेशोंमें निश्चल-चित्त है, उसके संस्कारोंका (वासना और सौख्य-लालसा का) नाश होकर वह शान्ति-स्थान—निर्वाण—के निकट पहुँचता है।

३८२। जो भिक्षु युवावस्थामें ही वुद्धके उपदेशोंमें चित्त लगाता है, वह वादलोंसे निकले हुए चन्द्रमा की नाईं संसारको प्रकाशित करता है।

छब्बीसवीं सीढ़ी।

ब्राह्मण (अर्हत) वर्ग ।

३८३। हे ब्राह्मण! वीरता से प्रवाहको रोककर वासनाको छोड़ दे। जब तुझे यह मालूम हो जायगा कि सर्व निर्मित सृष्टिका नाश किस तरह होता है, तब तुझे अनिर्मित सृष्टि के बारेमें ज्ञान होगा।

३८४। जो ब्राह्मण आत्म-निग्रह और ध्यान—इन दो धर्म्म-तत्त्वोंके उसपार पहुँच गया है, उसे पूर्ण ज्ञान हो जानेके कारण उसके समस्त पाशोंका नाश हो जाता है।

३८५। जिसे न यह तीर है और न वह तीर है—दोनों तीर नहीं हैं, यानी जो अन्तरिन्द्रियों और बहिरिन्द्रियोंसे मुक्त होगया है, उस निर्भय और निर्बंद्ध मनुष्यकोही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३८६। जिसने विवेकशील, निर्दोष, स्थिर, कर्त्तव्य-तत्पर और निर्विकार होकर परमार्थका साधन किया है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३८७। सूर्य दिनको प्रकाशित होता है, चन्द्रमा रातको उदय होता है। ज़िरहबख़्तर पहननेपर वीर पुरुष तेजस्वी

दिखता है, ध्यानस्थ होनेपर ब्राह्मण तेजःपूर्ण दिखता है। परन्तु बुद्ध अपने तेजसे अहोरात्र प्रकाशमान रहता है।

३८८। जो "धूत पाप" है (यानी जिसने अपने पापोंको दूरकर दिया है), उसे ब्राह्मण कहते हैं; जो शान्ति ग्रहण कर आचार रखता है, उसे श्रमण कहते हैं। जिसने अपना मल धो डाला है, उसे 'परिव्राजक' (संन्यासी) कहते हैं।

३८९। किसीको भी ब्राह्मण पर परिहार (प्रहार) नहीं करना चाहिए; परन्तु किसीके प्रहार करनेपर ब्राह्मणको प्रहार-कर्त्तापर अपना हाथ न उठाना चाहिए। जो ब्राह्मण को मारता है, उसे धिक्कार है; परन्तु जो ब्राह्मण मारनेवालेपर अपना हाथ उठाता है, उसे कहीं अधिक धिक्कार है।

३९०। संसारसुखोपभोगोंसे जो ब्राह्मण अपने मनका आकलन करता है, उसे वह संयमन बहुत हितकारी होता है। ज्योंही दूसरोंको दुःख देनेकी हमारी बुद्धिका नाश हुआ, त्योंही हमारा दुःख आपही आप नष्ट हो जाता है।

३९१। जो काया, वाचा अथवा मनसे किसीपर रुष्ट नहीं होता, जिसने इन तीनों इन्द्रियोंको अङ्कित कर लिया है, उसे मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३९२। जिस प्रकार ब्राह्मण यज्ञ के अग्निकी पूजा करता है, उसी प्रकार एकवार जहाँ मनुष्य को बुद्धके द्वारा उपदेशित किये गये धम्मकी जानकारी हो गई, तहाँ उसे उसका मनःपूर्वक भजन करना चाहिए।

३६३। जटा-भारके कारण, बड़े कुलमें जन्म-ग्रहण करनेके कारण, किम्वा जन्म-संस्कारके कारण मनुष्य ब्राह्मण नहीं होता ; परन्तु जो सत्याचरणी और प्रामाणिक है, वही धन्य, वही ब्राह्मण है।

३६४। रे मूर्ख ! जटाभार का क्या उपयोग है ? चर्मका क्या उपयोग है ? जब तेरा अन्तर्याम मलिन है तब सिर्फ़ बाहरसे स्वच्छता रखनेसे क्या लाभ है ?

३६५। जो मलिन वस्त्रोंको ओढ़ता है, जिसकी सब नसें दिखती हैं, जो कृश हो गया है और जंगलमें अकेला रहकर ध्यान करता है, उसे मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३६६। जन्म से किम्वा अमुक मातासे जन्मग्रहण करनेपर, मैं किसीको भी ब्राह्मण नहीं कहता। वह सचमुच उद्धत (बेमुरौवत) और श्रीमान् है। परतु जो ग़रीब और सर्व संगसे मुक्त है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

३६७। ज़िसने सारे बन्धनोंको तोड़ डाला है, जो निर्भय, निस्संग, और बन्ध-मुक्त होगया है, उसे मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३६८। जिसने रस्सी, पाश, बंध और उससे सम्बंध रखनेवाले सब कुछ तोड़ डाले हैं और जो जागृत हो गया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

३६९। अपराध न करते हुए भी जो निंदा, वन्दिवास किम्वा दण्ड सहन करता है, क्षमाही जिसका बल और धीरज ही जिसकी सेना है; उस मनुष्यको मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४०० । जिसका क्रोध चल बसा है, जो कर्त्तव्य-तत्पर, सदाचारी, तृष्णा-रहित और आत्म-निग्रही है और जिसकी यह शरीर-दशा अन्तिम है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४०१ । कमल-पत्र परके पानीकी बूँदकी नाईं अथवा सूई के अग्रभाग (नोक)पर रखी हुई राईके समान, जो क्षणिक टिकनेवाले विषय-सुखमें लिप्त नहीं रहता, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४०२ । जिसे इहलोकमें यह मालूम होजाता है कि मेरे दुःखोंका अन्त हो गया है, जिसने अपना भार उतार डाला है, और जो बंधमुक्त होगया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४०३ । जिसका ज्ञान अगाध है, जो विद्वान् है, जो यह जानता है कि सत्य-मार्ग कौनसा है और असत्य-मार्ग कौनसा है; और जिसने श्रेष्ठ पुरुषार्थ सिद्ध किया है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४०४ । गृहस्थों किम्वा भिक्षुओंसे जो दूर रहता है, जो घर-घर याचना करता नहीं फिरता, जिसकी इच्छाएँ अल्प हैं, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४०५ । जो दुर्बल किम्वा बलवान्, किसीके भी रास्ते कभी नहीं जाता और जो न हिंसा स्वयम् करता है तथा न दूसरोंसे कराता है, उसेही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०६ । जो सहनशील नहीं हैं, उनसे जो सहनशीलता धारण करता है; उसे जो दोष देते हैं, उनसे जो नम्र रहता है;

उसपर जो क्रुद्ध होते हैं, उनपर जो क्रुद्ध नहीं होता, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०७ । जिस मनुष्यके राग और द्वेष, गर्व और मत्सर सुईकी नोकपर रखी गई राईके समान गिर पड़े हैं, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०८ । जो ऐसा सत्य, बोधदायक और मधुर भाषण करता है, जिससे किसको भी दुःख न हो, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४०९ । किसीके कोई वस्तु न देनेपर—फिर वह चाहे छोटी हो अथवा बड़ी, लम्बी हो अथवा सकरी, अच्छी हो किम्वा बुरी —जो उसे नहीं लेता, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१० । जो इहलोक और परलोकके बारेमें आशा नहीं रखता, और वासनाओंसे छूटकर जो बंध-मुक्त होगया है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४११ । जिसमें स्वार्थ नहीं है और सत्यका ज्ञान हो जानेपर जो अमुक ऐसा और अमुक वैसा आदि शङ्काएँ नहीं करता और जो अमर स्थिति तक (निर्वाण तक) पहुँच गया है, उसेही मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१२ । इस संसारमें भला और बुरा इन दो बन्धनोंसे जो मुक्त है, उसी प्रकार जो दुःख से, पापसे और अशुद्धता से मुक्त है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१३ । जो चन्द्रमा की नाईं सतेज होकर पवित्र, शान्त-चित्त

और अव्यग्र है, और जिसमें दाम्भिकताका लवलेश मात्र भी नहीं है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१४। इस कीच-मय मार्गको, इस दुष्कर संसारको और यहाँ के अहंकार इत्यादिको जो फाँद गया है, संसारके पार होकर जो उसपार पहुँच गया है और जो विवेक-शील, निष्कपट, निस्सन्देह, निरासक्त और सन्तुष्ट है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१५। इहलोकमें सारी वासनाओंका त्याग करके और गृह को छोड़कर जो फिरता है और जिसकी सारी पाप-वासनाएँ शान्त होगई हैं, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१६। सारी आशाओंको छोड़कर तथा घर-बारका त्याग करके जो फिरता है और जिसमें लोभका समूल नाश हो गया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१७। जो मनुष्योंके बन्धनोंसे मुक्त होकर, देवताओंके भी बन्धनोंसे मुक्त होगया है; सारांश, जिसने समस्त बन्धनोंसे छुटकारा पालिया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१८। जिसने वह सब छोड़ दिया है, जिससे सुख एवम् दुःख प्राप्त होता है (अर्थात् जिसने समस्त उपाधियोंसे छुटकारा पालिया है), जो विरक्त है, जो पुनर्जन्मके चक्करसे मुक्त हो गया है, और जिस वीरने सारे लोकोंपर जय प्राप्त की है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१९। जिसे समस्त जगहोंपर प्राणीमात्रके होनेवाले संहार

तथा उत्पत्ति की जानकारी है और स्वयम् बन्धनों से मुक्त होकर जो सुगत (सद्गतिको पहुँचा हुआ) और बुद्ध (ज्ञानसे जिसकी अन्तर्दृष्टि दिव्य होगई है) है. उसे ही मै सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४२० । जिसका मार्ग देव, गन्धर्व और मानवको मालूम नहीं होता, जिसकी वासनाएँ नष्ट हो गई हैं और जो अर्हत (पूज्य) पदको प्राप्त होगया है. उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४२१ । भूत, भविष्य तथा वर्तमान बातोंके सम्बन्ध में जो ममत्व धारण नहीं करता, जो अकिंचन बनकर इहलोकके संबंधमें आसक्ति-रहित होगया है, उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४२२ । जो हिम्मतवाला, उदार, शूर, महान्, सिद्ध, विजयी, निष्कपट और विद्यासम्पन्न है और जिसे अन्तर्ज्ञान प्राप्त है. उसेही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

४२३ । जिसे अपने पूर्व-जन्मका ज्ञान होगया है, जिसे यह मालूम है कि स्वर्ग क्या है. नरक क्या है. जिसका जन्म-ग्रहण समाप्त हो गया है और जो पूर्णज्ञानी, सिद्ध और सर्वाङ्ग-परिपूर्ण बनगया है, उसे ही मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ ।

पारिभाषिक शब्द ।

अर्हत—पूज्य, साधु ।

आर्य—श्रेष्ठ, धर्मशील मनुष्य ।

तथागत—गौतम बुद्ध ।

निर्वाण—मुक्ति ; आत्माकी निष्पाप, स्थिर और शान्त अवस्था ।

परिव्राजक—संन्यासी ।

बुद्ध—सिद्ध ; धर्म-दर्शन होजानेपर गौतम बुद्ध कहलाने लगे ।

बोधिसत्त्व—जबसे गौतम ने धर्म-तत्त्वों की खोज करना आरम्भ किया और जब वे उन्हें प्राप्त होगये—उस काल तक उन्हें बोधि-सत्व कहते हैं ।

बोधि-वृक्ष—बोधिद्रुम, पीपलका वह वृक्ष, जिसके तले महाबुद्धको धर्म-दर्शन प्राप्त हुआ था ।

ब्राह्मण—धर्मोपदेशक साधु ।

भिक्षु—भिक्षा माँगकर धर्मोपदेश करनेवाला साधु ।

मार—कामदेव ; काम ; वासनारूपी सेना का राजा ।

मुनि—साधु, यति, मौन धारण करनेवाला ।

श्रमण—मुमुक्षु ; शान्तचित्त ; निर्वाण-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला ।

शाक्य मुनि }
सुगत } —महात्मा गौतम बुद्ध ।

द्रौपदी।

यह पुस्तक अभी-अभी प्रकाशित हुई है। इसमें प्रातःस्मरणीया महारानी द्रौपदीका चरित बड़ी मनोहर भाषामें लिखा गया है। सारा महाभारत छान कर द्रौपदी के जीवन की घटनाएँ वर्णित हुई हैं। हिन्दू-मात्र को यह ग्रन्थ देखना चाहिये। घर-घर में इसका प्रचार होना चाहिये। सती-शिरोमणि द्रौपदीका चरित प्रत्येक कुललक्ष्मियों को पढ़ना चाहिये। बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी ग्रन्थको पढ़ कर मनोरञ्जन और शिक्षा लाभ कर सकते हैं। सारा महाभारत पढ़नेका जिन्हें समय नहीं है, उन्हें यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ जाना चाहिये। प्रायः प्रत्येक प्रधान-प्रधान घटना इसमें आ गई है। सारी पुस्तक उपन्यास के ढंग पर लिखी गयी है और पढ़ने में ऐसा जी लगता है कि पुस्तक छोड़ते नहीं बनती। इसके सिवा पुस्तक की छपाई-सफ़ाई बड़ी ही नयनाभिराम है। चिकने काग़ज़ पर सुन्दर सुवाच्य अक्षरोंमें छापी गयी है। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर सुन्दर-सुन्दर एक दर्जन से अधिक चित्र भी दिये गये हैं। अवश्य पढ़िये, यह ग्रन्थ अपने ढंग का पहला है। मूल्य २॥) पृष्ठ संख्या २८० डाक महसूल पैकिंग ।)

हरिदास एण्ड कम्पनी

२०१, हरिसन रोड, कलकत्ता।